योगविद्या

वर्ष 10 अंक 2
फरवरी 2021
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2021

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, बाल योग दिवस, मुंगेर

अन्दर के रंगीन फोटो: 1: स्वामी शिवानन्द सरस्वती, ऋषिकेश;
2: स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, रिखिया;
3: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, मुंगेर;
4: स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती, रिखिया

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

भय पर विजय

कायरता मनुष्य की कमजोरी दर्शाती है। जिस प्रकार लज्जा से मनुष्य दबता है, उसी प्रकार कायरता से भी दबता है। कायर व्यक्ति समाज-सेवा या साहसिक कार्यों के लिए अयोग्य सिद्ध होता है। वह अपने जीवन में कभी सफल नहीं बन सकता।

आज संसार में कायरों की भरमार है, तभी तो लोग सुशिक्षित होने पर भी दीन-हीन हैं। कायर व्यक्ति के लिए संसार अन्धकारमय होता है, जबकि धीर व्यक्ति को इस संसार में सर्वत्र परमात्मा ही दिखाई देता है। कायर व्यक्ति समाज की आलोचनाओं से जल्द घबरा उठते हैं, जबकि ज्ञानी, योगी और भक्त निर्भय होकर विचरते हैं। जिस प्रकार क्रोध को जीत लेने से आधी साधना पूर्ण हो जाती है, उसी प्रकार भय पर विजय पाने से शेष आधी साधना भी पूरी हो जाती है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 10 अंक 2 फरवरी 2021
(प्रकाशन का 59 वाँ वर्ष)

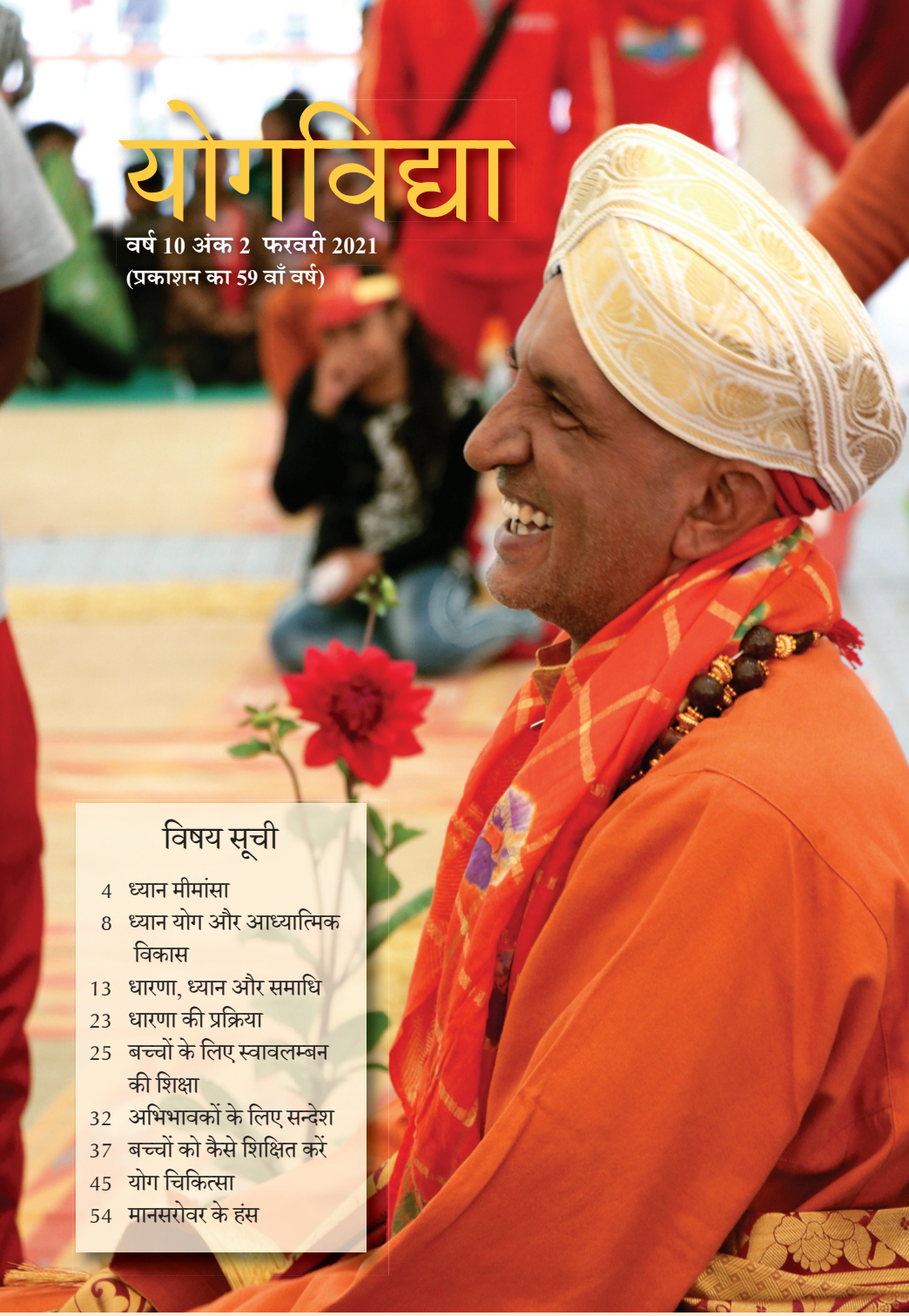

विषय सूची

4 ध्यान मीमांसा
8 ध्यान योग और आध्यात्मिक विकास
13 धारणा, ध्यान और समाधि
23 धारणा की प्रक्रिया
25 बच्चों के लिए स्वावलम्बन की शिक्षा
32 अभिभावकों के लिए सन्देश
37 बच्चों को कैसे शिक्षित करें
45 योग चिकित्सा
54 मानसरोवर के हंस

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

ध्यान मीमांसा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

ध्यान मन की वह स्थिति है, जहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय या विषयासक्त विचार नहीं रहते। यह एक ऐसी अवस्था होती है जहाँ सहजानुभूति या विचारों का एक निरंतर प्रवाह रहता है। एक वस्तु की अटूट सजगता मन में रहती है, जैसे नदी में जल का सतत् प्रवाह होता है, वैसे ही मन में केवल एक वृत्ति रहती है। ध्यान का अर्थ है ईश्वरीय चेतना के अनंत प्रवाह को बनाये रखना। निरंतर एक ईश्वर या आत्मा का विचार। यह एक बर्तन से दूसरे बर्तन में बिना किसी रुकावट के तेल के प्रवाह की तरह है। मन से सभी विषयानुगत विचारों को निकाल दिया जाता है। मन दिव्य विचारों, दैवी महिमा तथा दैवी उपस्थिति से भरा रहता है।

एकाग्रता के अभ्यास के पश्चात् ध्यान की अवस्था आती है। योग की सीढ़ी में यह सातवाँ कदम है। योगी इसे ध्यान कहते हैं, ज्ञानी-जन निदिध्यासन तथा भक्त भजन कहते हैं। ईसा मसीह कहते हैं, 'तुम अपने को खाली करो, मैं तुम्हें भर दूँगा।' महर्षि पतंजलि की भी यही शिक्षा है, 'चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।' मन को शून्य अवस्था में लाने की क्रिया बेशक एक कठिन अनुशासन है, परन्तु निरन्तर अभ्यास से सफलता मिलेगी, इसमें कोई संशय नहीं है।

ध्यान की आवश्यकता

अमरत्व और परमानंद पाने के लिये ध्यान ही एकमात्र रास्ता है। जो लोग एकाग्रता और ध्यान का अभ्यास नहीं करते, वे आत्मा के कातिल हैं। बुद्धिमान साधक निरंतर ध्यान की तेज तलवार से अंधकार की ग्रन्थि के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। तब आत्मा का सर्वोच्च ज्ञान अवतरित होता है और आत्मज्ञानी को पूर्ण आन्तरिक प्रकाश प्राप्त होता है। मोक्ष प्राप्त संत को कोई संदेह या भ्रम नहीं होता। कर्मों के सभी बन्धन टूट जाते हैं। इसलिये हमेशा ध्यान में लगे रहो, यह परमानंद के द्वार की कुंजी है। शुरू में यह अभ्यास कठिन और अरुचिकर हो सकता है, क्योंकि प्राय: मन एकाग्रता के विषय से हट जाता है। लेकिन कुछ अभ्यास के पश्चात् यह केन्द्र पर एकाग्र हो जाएगा। आप दिव्य आनन्द तथा शान्ति में डूब जाएँगे।

जिस प्रकार आपको शरीर के लिये भोजन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आपकी आत्मा को प्रार्थना, जप, कीर्तन और ध्यान के रूप में भोजन की आवश्यकता होती है। जैसे समय पर भोजन न मिलने से आप गुस्सा हो जाते हैं, वैसे ही जब आप कुछ समय तक लगातार प्रार्थना और जप का अभ्यास कर लेते हैं, तब यदि आप कभी सुबह या शाम को प्रार्थना न करें, तो आपको बेचैनी-सी होने

लगती है। आत्मा के लिये भोजन की आवश्यकता शरीर से अधिक है। इसलिये आपको प्रार्थना, जप और ध्यान का अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए।

ध्यान का फल

गहरे ध्यान से आत्म-नियंत्रण और मानसिक स्थिरता की प्राप्ति होती है। मन को ईश्वर पर एकाग्र कीजिए। आपको दिव्य जीवन का आनन्द प्राप्त होगा। आप दिव्य गुणों से भर जायेंगे। आपको पूर्ण सामंजस्य, निरंतर प्रसन्नता और चिरस्थायी शान्ति का अनुभव होगा। मोक्ष प्राप्त करने के लिए ध्यान ही वास्तविक राज-मार्ग है। यह सभी दु:खों और क्लेशों को समाप्त कर देता है। यह दु:ख के कारण को ही नष्ट कर देता है। यह एकत्व की अनुभूति प्रदान करता है। यह योगी के लिए एक दिव्य सीढ़ी है, जो उसे सर्वोच्च चेतना की अवस्था तक पहुँचाती है। ध्यान के बिना आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं है।

नियमित ध्यान अंतर्ज्ञान के द्वार खोलता है, मन को शान्त और स्थिर बनाता है। यदि कोई ध्यान योग के मार्ग का व्यवस्थित रूप से अनुसरण करता है, तो उसके सभी संशय अपने आप मिट जाते हैं। यदि आप रात में घड़ी को चाबी देते हैं, तो यह बिना रुके चौबीस घण्टे चलेगी। इसी प्रकार आप सुबह चार बजे एक या दो घण्टे ध्यान करें, तो आप पूरे दिन शान्ति से काम कर सकेंगे। आपका पूरा व्यक्तित्व आध्यात्मिक सपन्दनों से ओत-प्रोत हो जायेगा।

दु:ख का अनुभव तभी तक होता है, जब तक मन का सम्बन्ध शरीर से रहता है। यदि आप मन को शरीर से अलग कर सकें, तो कहीं कोई कष्ट नहीं रहेगा। आत्मा आनन्द की प्रतिमूर्ति है। यदि आप ध्यान द्वारा मन को शरीर तथा विषयों से हटाकर आत्मा में स्थिर कर दें, तो सभी कष्टों का अन्त हो जाएगा।

वास्तविक शिथिलीकरण ध्यान के समय ही होता है, जब मन आत्मा में विश्राम करता है। कार्य में परिवर्तन विश्राम प्रदान कर सकता है। निष्क्रिय बैठने और मन को क्रुद्ध हाथी की तरह बिना सोचे-समझे इधर-उधर घूमने देने या हवाई किले बनाने से विश्राम नहीं मिलता।

जो व्यक्ति ध्यान में मन को स्थिर नहीं कर सकता, उसे आत्म-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि आप आधा घण्टा ध्यान कर सकें, तो आपके ध्यान की शक्ति आपको एक सप्ताह तक शान्तिपूर्वक जीवन के संघर्ष का सामना करने का सामर्थ्य प्रदान करेगी।

नियमित रूप से ध्यान करने वाले योगी का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक और कांतियुक्त होता है। जो लोग उसके सम्पर्क में आते हैं, वे उसकी मधुर आवाज, प्रभावशाली वाणी, चमकदार आँखों, उज्ज्वल स्वरूप, मजबूत स्वस्थ शरीर, अनुकरणीय व्यवहार, नेक गुणों तथा दिव्य स्वभाव से प्रभावित होते हैं। लोग उससे प्रसन्नता, शान्ति और शक्ति प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार ध्वनि तरंगें आकाश में विचरण करती हैं, उसी प्रकार ध्यान का अभ्यास करने वाले की आध्यात्मिक तरंगें दूर तक जाती हैं तथा हजारों लोगों को शान्ति और शक्ति प्रदान करती हैं। अगर आप श्रीकृष्ण, भगवान शिव या आत्मा पर केवल पाँच मिनट तक भी अपने मन को केन्द्रित कर सकें, तो आपका मन सत्त्व गुण से भर जाएगा।

आप ध्यान द्वारा प्राप्त आनन्द की तुलना विषयों से प्राप्त अस्थायी सुखों से करें, तो पायेंगे कि यह विषयों से प्राप्त सुखों की अपेक्षा दस हजार गुणा अधिक श्रेष्ठ है। ध्यान कीजिए और आनन्द का अनुभव कीजिए, तभी आप इसका मूल्य समझ पायेंगे।

यदि साधक अपने गुरु पर ध्यान करता है, तो इससे दोनों के बीच एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। शिष्य के विचारों के उत्तर में गुरु उसके भीतर अपनी शक्ति, शान्ति, प्रसन्नता और आनन्द का संचार करता है। शिष्य अपने विश्वास की मात्रा के अनुपात में गुरु से ग्रहण करता है। जब भी शिष्य गंभीरता से अपने गुरु पर ध्यान करता है, गुरु वास्तव में अनुभव करता है कि प्रार्थना की एक धारा या शुद्ध विचार उसके शिष्य से आ रहे हैं और उसके हृदय को छू रहे हैं।

ध्यान द्वारा आध्यात्मिक शक्ति, शान्ति, नये उत्साह और बल की प्राप्ति होती है। यह सभी मानसिक बलवर्द्धक औषधियों में उत्तम है। ध्यान से सशक्त तथा शुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं। विचारों में स्पष्टता आती है और उलझन समाप्त हो जाती है।

नियमित ध्यान से धीरे-धीरे मन की चंचलता दूर हो जाती है। ध्यान का अभ्यास चिड़चिड़ाहट को दूर करता और मानसिक शान्ति लाता है।

प्रात: 3.30 से 5.30 का समय ब्रह्ममुहूर्त कहलाता है। इस समय अच्छी नींद के पश्चात् मन तरोताजा, शान्त और शुद्ध होता है तथा ध्यान के लिये तैयार रहता है। मन में सत्त्व की प्रधानता होती है। वातावरण में भी इस समय सत्त्व की प्रधानता होती है।

सुबह-सुबह मन एक कोरे कागज की तरह होता है, सांसारिक चिन्ताओं से प्राय: मुक्त। राग-द्वेष की धारा ने अभी इसमें प्रवेश नहीं किया होता। इस समय मन को चाहे जिस दिशा में मोड़ा जा सकता है, दिव्य विचारों से ओत-प्रोत किया जा सकता है।

योगी, परमहंस, संन्यासी तथा हिमालय के ऋषि अपना ध्यान इसी समय आरम्भ करते हैं और अपनी तरगों को पूरे विश्व में सम्प्रेषित करते हैं। यदि आप ब्रह्ममुहूर्त के समय ध्यान करें तो उनकी आध्यात्मिक तरंगों से आपको बहुत लाभ होगा। इस समय बिना किसी प्रयास के अपने आप ध्यान लगेगा। यदि इस समय का उपयोग दैवी चिन्तन में न कर आप खर्राटे लेते हैं, तो आपकी बहुत अधिक आध्यात्मिक क्षति होगी।

प्रात:काल और संध्या का समय ध्यान के लिये बहुत उपयुक्त है। इस समय सुषुम्ना नाड़ी का प्रवाह आसानी से होता है। उठने के पश्चात् नित्यकर्मों से निवृत्त होकर सबसे पहले ध्यान तथा जप करें। यह महत्त्वपूर्ण है। इसके पश्चात् आसन तथा प्राणायाम करें और गीता या अन्य किसी धार्मिक ग्रंथ का अध्ययन करें।

ध्यान का स्थान

ध्यान के लिये एक अलग कमरा होना चाहिए। किसी अन्य को इस कमरे के अन्दर मत आने दीजिए। इसे पवित्र रखिये। यदि अलग कमरा रखना सम्भव न हो तो कमरे के एक कोने को ध्यान के लिये चुन लीजिए तथा वहाँ पर्दा डाल दीजिये। वहाँ सुबह-शाम धूप तथा कपूर जलाइये। अपने गुरु, भगवान कृष्ण, शिव, राम, देवी, गायत्री, ईसा-मसीह या बुद्ध की तस्वीरें रखिये। अपना आसन इन तस्वीरों के आगे लगाइये। कुछ आध्यात्मिक पुस्तकें भी कमरे में रखिये, जैसे, रामायण, गीता, भागवत तथा उपनिषद्।

कमरे को प्रेरक संतों, साधुओं, पैगम्बरों तथा जगत् गुरुओं की तस्वीरों से सजाइये। अन्दर प्रवेश करने से पहले नहा लीजिए या हाथ, मुँह और पैर धो लीजिये। अपने इष्ट के सामने आसन पर बैठ जाइये, कुछ भजन गाइये या गुरु स्तोत्र का पाठ कीजिये। फिर जप, एकाग्रता तथा ध्यान का अभ्यास कीजिये। ईश्वर करे आप सब नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास करें और अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करें।

ध्यान योग और आध्यात्मिक विकास

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

शरीर, मन और बुद्धि के परे हममें से प्रत्येक व्यक्ति में एक आस्था है, एक शक्ति है और एक प्रकाश है जिसका एहसास हमें नहीं हो पाता। हम उसको अपने अनुभव में नहीं ला पाते। योग का उद्देश्य अपने केन्द्र को जानना है। शरीर, मन, बुद्धि और भावनाएँ, जहाँ तक हमारी जानकारी है, सभी बाह्य सत्ताएँ हैं। वे वास्तविक सत्ता नहीं हैं। चूँकि हम उस आंतरिक सत्ता की दृष्टि से काफी दूर हैं, अतः हम अपूर्ण हैं।

आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से योग के कई मार्ग हैं। उन सभी मार्गों में एक अति महत्त्वपूर्ण ध्यान-मार्ग की चर्चा करूँगा। मेरी समझ में बहुत-से लोग ध्यान की विधि जानना चाहते हैं। ध्यान मार्ग ही परम पथ है। यह हमारे निजी अस्तित्व का अंश है। इसलिए सम्पूर्ण विश्व में लोग ध्यान-विधियों के अन्वेषण में लगे हुए हैं। वर्त्तमान सदी में ही नहीं, वरन् हजारों वर्ष पूर्व से हमारे मनीषियों ने उद्घोष किया है कि हमें अपनी बाह्य अनुभूतियों के पार जाने का प्रयत्न करना चाहिए। जब हम बाह्य अनुभूति के पार जायेंगे तो हमें एक दूसरी उच्चतर अनुभूति प्राप्त होगी। उसे हम आध्यात्मिक अनुभूति, इन्द्रियातीत अनुभूति या आत्मानुभूति कह सकते हैं।

यद्यपि हम ध्यान शब्द का उपयोग करते आ रहे हैं, लेकिन वास्तव में हम जो भी अभ्यास करते हैं, वह ध्यान नहीं है, बल्कि हम ध्यान की तैयारी कर रहे होते हैं। ध्यान का मतलब होता है आत्म-सजगता या आत्म-चेतना। ध्यान करने वाले की या ध्यान प्रक्रिया की सजगता को हम ध्यान नहीं कह सकते। हमें ध्यान के लक्ष्य की

सजगता, ध्यान करने वाले ध्याता के प्रति सजगता और ध्यान की प्रक्रिया, इन तीनों का अतिक्रमण करना होगा। तब ध्यान सहज, स्वभाविक और सतत् हो पाता है।

ध्यान का लक्ष्य उच्च व दिव्य चेतना को विकसित करना होता है। यही चेतना जीवन की सभी गतिविधियों का नियंत्रण करती है। यह काम ठीक वैसे ही होता है जैसे देश में राष्ट्रपति शासन लागू होने पर राज्यपाल किसी राज्य का सारा कार्यभार अपने हाथों में लेता है जबकि मंत्रीमंडल कार्यशील नहीं रहता। उसी प्रकार जब हम समझते हैं कि हमारा यह मन जीवन के कार्यों को भलीभाँति चलाने में सक्षम नहीं है, यह हमें निराशा, दुःख और कुण्ठाएँ दे रहा है तो हम क्षुब्ध होकर कहते हैं – 'नहीं-नहीं, यह मन अच्छा संचालक नहीं है।' सीमित मन को उच्च शक्ति के द्वारा रूपान्तरित करना ही होगा, मगर समस्या यह है कि हमारे पास वह उच्च सजगता ही नहीं है। इसलिये अपनी अतीन्द्रिय चेतना को विकसित करने के लिये हम ध्यान का अभ्यास करते हैं।

ध्यान का अर्थ है पूर्ण जागरूकता, यह राजयोग की सप्तम सीढ़ी है। परन्तु राजयोग के अनुसार ध्यान का अभ्यास किया नहीं जाता है, वरन् ध्यान की अवस्था स्वतः आती है। अपने शरीर, मन और भावनाओं को ध्यान के लिये तैयार कर लेने पर ध्यान स्वतः लग जाता है।

आप अपने मन को किसी एक वस्तु पर तब तक केन्द्रित नहीं कर सकते, जब तक कि आपका स्नायु संस्थान व्यवस्थित न हो गया हो, अन्य शारीरिक असन्तुलन ठीक न हो गये हों। आपके अनुभव केवल मानसिक तत्त्वों पर निर्भर नहीं करते। ध्यान केवल मन की कार्यविधि पर निर्भर नहीं करता। शरीर भी अपनी भूमिका अदा करता है। यदि आपके शरीर में एड्रीनलिन का आधिक्य हो गया है या थायरायड अथवा यौन हॉर्मोन का अधिक मात्रा में स्राव हो गया हो या कॉर्टीसोन का कम या अधिक मात्रा में स्राव हो रहा हो अथवा अधिक अम्लता या अन्य शारीरिक असन्तुलन हो, तो ऐसी अवस्था में एकाग्रता का अभ्यास करने का कोई अर्थ ही नहीं होता। ये अन्तःशारीरिक अवरोध चेतना की शक्ति को संगठित नहीं होने देंगे। ये शक्ति को तितर-बितर कर देंगे। आप इन अन्तःशारीरिक सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं कर सकते। इसलिए योगी हठयोग, आसन, प्राणायाम और सन्तुलित भोजन की शिक्षा देते हैं।

इसी प्रकार यदि आपका स्नायु-संस्थान अव्यवस्थित है, चाहे वह शारीरिक कारणों से हो, भावनात्मक कारणों से हो, या स्थान विशेष के कारण हो, तो आप चाहते हुए भी ध्यान नहीं कर सकेंगे। इसके बावजूद यदि आप बलपूर्वक ध्यान करने का प्रयास करेंगे तो आपको अप्रसन्नतादायक अनुभूतियाँ होंगी, ठीक उसी तरह की भ्रान्तियाँ होंगी जैसी नशीली औषधियाँ सेवन करने से होती हैं।

इसलिए ध्यान योग का अभ्यास करने के लिये आपको विधिवत् प्रशिक्षण लेना आवश्यक है और कुछ महीनों के अन्दर ही ध्यान में पारंगत होने की कामना

भी नहीं करनी चाहिए। ध्यान योग में पारंगत होना बड़ा कठिन है। हजारों वर्षों से बाह्य जगत् के प्रति अपनी चेतना को बनाये रखने के अनुकूल हमें तैयार किया गया है और जब हम अपनी बहिर्मुखी चेतना को अन्दर की तरफ मोड़ते हैं, वास्तविकता की ओर मोड़ते हैं तब वह हमारे पूर्व प्रशिक्षित स्वभाव के प्रतिकूल होता है। हमें हमेशा याद रखना होगा कि ध्यान में जो आन्तरिक चेतना होती है वह निम्न स्तर की चेतना नहीं होती, वह सम्मोहक चेतना भी नहीं है, वह निलम्बित चेतना भी नहीं है, यह वही चेतना है जिसका अनुभव अभी आप कर रहे हैं।

ध्यान करते समय आपको अपनी चेतना के आयाम में किसी प्रकार का दखल नहीं देना चाहिए और न ही अपने मन को दमित करना चाहिए। मन जो चाहता है उसी का अनुसरण करना चाहिए एवं अपनी चेतना को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचानी चाहिये। तब ध्यान के समय एक ऐसा क्षण आता है जब सभी वस्तुयें लुप्त हो जाती हैं। जहाँ न आप होते हैं, न देश और काल ही होते हैं। यही ध्यान योग है। ध्यान मात्र मानसिक क्रिया नहीं है। यह शरीर को प्रभावित करता है। इसका प्रभाव हृदय, पाचन संस्थान, हॉर्मोन-समूह तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थियों पर भी पड़ता है। यह भी देखा गया है कि ध्यान में मस्तिष्क की तरंगों का स्वरूप बदलता है।

ध्यान का प्रमुख लाभ यह है कि इससे मस्तिष्क के निष्क्रिय तथा अर्द्धसुप्त केन्द्र जागते तथा सक्रिय होते हैं। निश्चय ही प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य अपने मस्तिष्क के अज्ञात निष्क्रिय क्षेत्रों को सक्रिय तथा आलोक-सम्पन्न बनाना है, ताकि जीवन आनन्दमय बने, ज्ञान और चेतना विकसित हो। ध्यान का सर्वसुलभ तरीका यह है कि अपने भीतर किसी वस्तु के प्रति सहज, निरंतर चेतना बनाई रखी जाये। इससे समूचा मस्तिष्क हरकत में आ जाता है।

ध्यान योग का परम लक्ष्य मानव की समग्र चेतना को विकसित करना है। ध्यान योग को समग्र चेतना का योग भी कहा जाता है। मनुष्य का मन इतना चंचल और विक्षिप्त रहता है कि वह किसी वस्तु को उसके समग्र रूप में नहीं पकड़ सकता। इसलिए ध्यान कोई ऐसी चीज नहीं जो पलक झपकते सिद्ध हो सके। इसके लिये वर्षों तक नियमित रूप से प्रतिदिन अभ्यास करना पड़ता है।

ध्यान में क्या होता है? क्या आप ध्यान में अपने जीवन को विस्मृत कर देते हैं? क्या आप यथार्थ से पलायन करते हैं? अथवा, क्या आप ध्यान में होश-हवास खो बैठते हैं? अनेक ऋषियों, मनीषियों तथा आधुनिक वैज्ञानिकों का यह अनुभूत निष्कर्ष है कि ध्यान की अवस्था में मन में महान् रूपान्तरण घटित होता है। आगे चलकर यही रूपान्तरण मनुष्य की चेतना के उत्थान में सहायक होता है।

मनुष्य के दु:खों का कारण मात्र सामाजिक अथवा आर्थिक नहीं है। उसके दु:खी होने का कारण उसका अपना बीमार मन है। यदि आप दु:खी हैं तो यह समझिये कि आपके मन का आमूल रूपान्तरण और उपचार आवश्यक है और इस

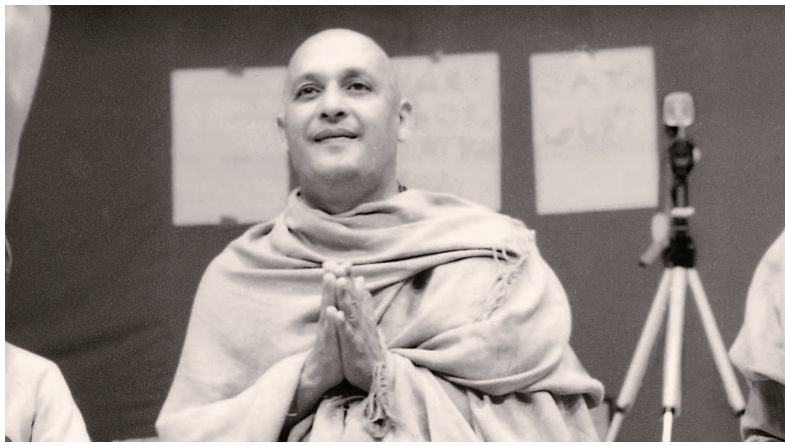

कार्य के लिये केवल ध्यान योग ही रामबाण युक्ति है। हमेशा यह स्मरण रखिये कि ध्यान निष्क्रिय नहीं बल्कि गत्यात्मक प्रक्रिया है और केवल गत्यात्मक प्रक्रिया मन में परिवर्तन ला सकती है। इससे मन अधिक सक्षम, मजबूत और सामंजस्यपूर्ण होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि ध्यान कैसे करें?

ध्यान का प्रारम्भ शरीर को तैयार करने से होता है। इसके अन्तर्गत तंत्रिका-तंत्र, हृदय, श्वसन-संस्थान और मस्तिष्क आदि सबकी तैयारी आवश्यक है। शरीर की तैयारी के निमित्त हठयोग का अभ्यास करना चाहिए। हठयोग को मात्र शारीरिक व्यायाम समझना भूल है। हठयोग वह अचूक युक्ति है जिसके द्वारा हमारे अनुकम्पी तथा परानुकम्पी तंत्रिका तंत्रों में स्वस्थ संतुलन आता है। इसके अतिरिक्त आसन, प्राणायाम, मुद्रा तथा बंध के नियमित अभ्यास द्वारा ध्यान योग की तैयारी पूरी होती है। कर्मयोग का अभ्यास करते हुए अपने मन को संस्कारों के प्रभाव से मुक्त करके उसे शुद्ध करना होगा और भक्तियोग द्वारा, विशेषकर मंत्र-जप और कीर्तन के द्वारा मन को स्थिर कर लेना होगा।

हमें यह अच्छी तरह समझ लेना है कि योग में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है ध्यान। ध्यान ही उत्तर है, ध्यान ही मार्ग है। ध्यान के द्वारा जब आप देहाध्यास से ऊपर उठ जाते हैं, जब आपको नाम और रूप का कोई बोध नहीं रह जाता, जब आप बीती यादों से ऊपर उठ जाते हैं और जब आपको किसी गहन चीज का, स्पष्ट नहीं तो छायाभास भी मिलने लग जाता है तो समझ लीजिये कि आप सही रास्ते पर हैं।

वे लोग जो प्रकाश को देख सकते हैं, जो भीतर में ही शब्द एवं दिशा का अनुभव कर सकते हैं, वे सही रास्ते पर हैं। हम शरीर में रहते हैं, हमें शरीर की सजगता रहती है, लेकिन हम इसके ऊपर उठ नहीं सकते हैं जब तक कि हम गाढ़ी निद्रा में नहीं जायें। हमें एक चेतन अभ्यास का पता पाना है, जिसके द्वारा हम क्रमशः

द्वैत अनुभव से, नाम तथा रूप से ऊपर उठ सकें। हमें छलांग लगाकर अहमन्यता को पीछे छोड़ना पड़ेगा। अहमन्यता की स्थिति से ऊपर की यही छलांग समाधि है। निश्चिय ही यह कोई आसान काम नहीं है, परन्तु यह एक ऐसी चीज है जिसे प्राप्त करना वाञ्छित ही नहीं, अनिवार्य है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान की गहराई उपलब्ध होनी चाहिये। ध्यान में जो हल्की अनुभूतियाँ होती हैं, वे स्थायी नहीं, अल्पकालीन होती हैं। उन अनुभवों को परिवर्तनों के एक क्रम से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक दिन, प्रत्येक सप्ताह वह भिन्न हो सकता है। ध्यान के सिलसिले में सारे अनुभव जो आपको प्राप्त होते हैं, वे अन्तिम अनुभव नहीं होते।

क्रमानुसार अनुभवों की एक शृंखला होती है, जो अंततः उस अनुभव का रूप धारण करती है, जिसको आत्मानुभव या आध्यात्मिक अनुभव या अद्वैतानुभव या एकात्मता का अनुभव कहते हैं। इस समय तक जो अनुभव हमें उपलब्ध हुआ, और उस अनुभव के बीच जिसकी मैं चर्चा कर रहा हूँ, हजारों अनुभव हैं, जो साधक को अवश्य ही प्राप्त होते हैं।

उसके लिये कतिपय विधि-विधान हैं, जिनको ध्यान कहते हैं। सारे आध्यात्मिक प्रयासों का लक्ष्य वही होना चाहिए। मैं आप लोगों से सदैव कहता रहा हूँ कि जीवन में सब कुछ तो बिल्कुल ठीक ही है, लेकिन वही अन्तिम नहीं है। आपको और भी कुछ चाहिए। उसे प्राप्त करने के लिये हम ध्यान को एक अचूक साधन मान लें और उसी के अभ्यास द्वारा अपनी चेतना की शक्तियों का विकास हम करते चलें।

भोजन से अधिक महत्त्व ध्यान का है। निद्रा से अधिक महत्त्वपूर्ण ध्यान है। जीवन के किसी भी आमोद-प्रमोद से अधिक आवश्यकता ध्यान की है। किसी भी तरह, किसी आकस्मिक कारण से, किसी की कृपा से अथवा सौभाग्य से यदि ध्यान के क्षेत्र में आपका एक कदम भी बढ़ जाये तो आप मानव नहीं, महामानव हैं।

ध्यान रहे, सिर्फ आँख बंद कर, विचार तरंगों को रोककर स्वप्नावस्था में प्रवेश कर जाना ध्यान नहीं है। बहुधा ध्यान के बदले लोग सम्मोहन की अनुभूति प्राप्त कर लेते हैं। वे ध्यान की साधना नहीं करते, सम्मोहन का अभ्यास करते हैं। वे मन का दमन करना चाहते हैं। वे मन को पददलित कर ध्यान को उपलब्ध करना चाहते हैं, जैसे लोग प्रायः अपने बच्चों के साथ करते हैं। कृपया वैसा मत करें।

यदि आप ध्यान के महत्त्व को स्वीकार करते हैं तो प्रतिदिन कम-से-कम आधा घण्टा समय आपको ध्यानाभ्यास के लिए देना चाहिए। ध्यान हमारी अनुभूति की गुणवत्ता में रूपान्तरण ला सकता है। वह दैविक अनुभूति, आदर्श अनुभूति ही नहीं, बल्कि साधारण दैनिक जीवन की अनुभूति या अन्य प्रकार की अनुभूति की गुणवत्ता में बदलाव ला सकता है। परिवार में कोई दुःखद प्रसंग आने पर ध्यान द्वारा उसकी पीड़ा की तीव्रता को कम किया जा सकता है, और कोई सुखद प्रसंग आने पर आनन्दानुभूति की सघनता को बढ़ाया जा सकता है।

धारणा, ध्यान और समाधि

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों में वर्णित अष्टांग योग के पहले पाँच अंग – यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार बहिरंग कहलाते हैं, और अंतिम तीन अंग अंतरंग। इन अंतरंग अंगों में धारणा, ध्यान और समाधि आते हैं।

धारणा

योग सूत्रों के तीसरे पाद, विभूति पाद के प्रथम सूत्र में धारणा के बारे में बतलाया है – *देशबन्धश्चित्तस्य धारणा*, अर्थात् चित्त को एक स्थान पर बांधकर रखना धारणा है। धारणा का तात्पर्य होता है मन को एक बिंदु में टिका देना और उसको वहाँ से हिलने नहीं देना। एक प्रकार से मानकर चलिये कि यह एकाग्रता का ही थोड़ा और व्यापक रूप है। प्रत्याहार में हम इंद्रियों को समेटकर और मन की चंचलता को शांत कर एकाग्रता को विकसित करने का प्रयास करते हैं। जब प्रत्याहार सिद्ध हो जाता है तब फिर धारणा कि स्थिति आती है जिसमें हम अपने मन को किसी एक बिंदु में केंद्रित करके फिर उसको वहाँ पर स्थिर छोड़ सकते हैं।

उदाहरण के लिए मंत्र जप को लीजिये। अगर हमलोग माला के साथ मंत्र जप करते हैं तो 15-20 मनकों के बाद मन वहाँ से गायब हो जाता है। लेकिन धारणा में 15-20 के बाद मन गायब नहीं हो रहा है। अगर धारणा सिद्ध हो गई है तो पूरी माला उसी सजगता के साथ, उसी एकाग्रता के साथ हम पूरी कर सकेंगे क्योंकि वहाँ पर मन के विक्षेप, मन का डोलना समाप्त हो जाता है।

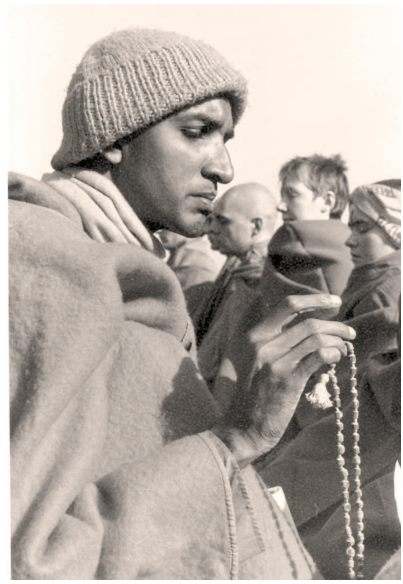

धारणा का एक और उदाहरण देता हूँ। महाभारत में एक प्रसंग आता है जिसमें गुरु द्रोणाचार्य मिट्टी की चिड़िया को पेड़ की डाली पर रखकर अपने शिष्यों से कहते हैं कि इसकी आँख में बाण मारना है। एक-एक करके शिष्यों को बुलाते हैं, उनसे पूछते हैं कि तुम क्या देख रहे हो? कोई कहता, मैं पेड़ भी देख रहा हूँ, चिड़िया भी देख रहा

हूँ, अपने स्वजनों को भी देख रहा हूँ, बगल के पेड़ों को भी देख रहा हूँ। उसको कहते, अब तुम धनुष नीचे रखो, वापस जाओ। दूसरे को बुलाते, दूसरा भी वैसा ही जवाब देता, मैं आसमान भी देख रहा हूँ, बादल भी देख रहा हूँ, आसमान में उड़ती हुई चिड़िया को भी देख रहा हूँ और पेड़ पर मिट्टी की चिड़िया को भी देख रहा हूँ। लेकिन जब अर्जुन की बारी आती है और उससे पूछा जाता है कि तुम क्या देख रहे हो, वह कहता है कि मुझे चिड़िया की आँख के अलावा और कुछ दिखलाई नहीं दे रहा है। क्या अर्जुन की दृष्टि में कोई दोष था? नहीं, यह धारणा की अवस्था है। अर्जुन भी सब कुछ देख रहा है, लेकिन उसका मन अभी केवल एक ही बिंदु पर केंद्रित है। उसने अपने मन के विक्षेप खत्म कर दिये, उसके मन का डोलना समाप्त हो गया। धारणा एक बहुत ही व्यक्तिगत अनुभव है, जिसमें व्यक्ति कभी-कभी सब चीजों को ब्लॉक करके देश, काल, परिस्थिति सबको भूल सकता है।

एक अन्य उदाहरण है अकबर के जीवन का। एक बार वे जंगल में जाकर शिकार कर रहे थे। शिकार करते समय नमाज का वक्त हो गया। वे जंगल में ही अपना चादर बिछाकर बैठ गये। जब वे नमाज अदा कर रहे थे तो उस समय एक भील युवती मस्ती में कहीं से आयी और उनकी चादर पर पैर रखते हुए चली गयी। अकबर आग-बबूला हो गये, इसकी कैसे हिम्मत, क्या अंधी है जो देखती नहीं कि कहाँ पर चल रही है? खैर, नमाज अदा कर रहे थे, इसलिये शांत रहे। लेकिन जब नमाज खत्म हुई तो सैनिकों को आदेश दिया कि उस युवती को पकड़कर लाओ। वे लोग गये और लड़की को पकड़कर ले आये। अकबर ने लड़की से पूछा, 'क्या तुम अंधी हो? दिखता नहीं कि तुम कहाँ पर पैर रख रही हो?' युवती बेचारी भय से काँप रही थी। उसने कहा, 'महाराज! मुझे तो कुछ ख्याल ही नहीं कि मैं क्या कर रही थी। मैं तो अपने विचारों की मस्ती में ही चली जा रही थी।' अकबर ने पूछा, कौन-सी मस्ती? उसने कहा, 'अपने प्रेमी की मस्ती। मैं अपने प्रेमी से मिलने जा रही थी, उसी के बारे में सोच रही थी, मुझे दिखा भी नहीं कि मैं कहाँ चल रही हूँ, कैसे चल रही हूँ। वैसे महाराज, आप भी तो अपने प्रेमी से ही मिल रहे थे, लेकिन आपको सब चीजों का ज्ञान था।'

यहाँ पर यह बात दिखलायी देती है कि प्रार्थना या जप के समय भी प्राय: बाहरी चीजों की सजगता रहती है। यह धारणा नहीं है। हमने अपने चित्त को एक स्थान में बाँधकर नहीं रखा है। लेकिन वह युवती धारणा की अवस्था में थी। जंगल में जा रही थी, सब चीज देख रही थी, लेकिन उसकी सारी सजगता मात्र एक चिंतन में ही केन्द्रित हो गयी थी। इसे कहते हैं धुन। वह अपनी धुन में मगन हो गयी। इतनी मगन हो गयी कि उसकी सजगता पूर्णतया केन्द्रित हो गयी उसी धुन में, चिंतन में। उसकी सजगता बँटी हुई नहीं थी, जैसे हमारी सजगता रहती है। वह स्थिति है धारणा की।

जब हम अपने आपको एकाग्र करने का प्रयास करते हैं तो एकाग्रता कुछ क्षणों के लिये आती है, फिर जाती है। कुछ समय के बाद हम दुबारा प्रयास करते हैं, कुछ क्षणों के लिये एकाग्रता आती है, चली जाती है। यह प्रत्याहार है। जब उसी एकाग्रता की अवधि बढ़ जाये तो धारणा हो जाती है, और जब एकाग्रता की अवधि निरंतर हो जाये तो ध्यान है। धारणा, ध्यान और समाधि की जो तीन अंतिम अवस्थायें हैं, उनमें एकाग्रता ही मुख्य बिन्दु है। एकाग्रता भंग न हो, मन स्थिर रहे, डोले नहीं, यही प्रयास किया जाता है।

एकाग्रता के सम्बन्ध में एक और बिंदु है। जब इन्द्रियाँ चंचल हैं तो मस्तिष्क में रक्त का स्राव अधिक होता है, लेकिन जब इन्द्रियों को शांत करते हैं तो मस्तिष्क में रक्त का स्राव धीरे-धीरे कम होता है और तन्द्रा की स्थिति आती है। जब हम योग में आए थे तो एक बार हमने त्राटक का अभ्यास किया। त्राटक करने के बाद लेट गये। कब नींद आयी पता नहीं। हमें आश्चर्य लगा कि ऐसे नींद कैसे आ गयी। बहुत दिनों तक हमने प्रयोग किया। फिर एक महीने के बाद हमने अपने गुरुजी से पूछा कि मुझे ऐसा-ऐसा अनुभव हो रहा है त्राटक में, क्या ऐसा होना चाहिये या नहीं? उन्होंने बतलाया कि त्राटक एकाग्रता का अभ्यास है, और जब तुम किसी एक चीज पर, चाहे वह ज्योति हो या बिन्दु हो या सूर्य हो या चन्द्र हो, उस पर अपनी दृष्टि को एकाग्र करते हो तो दृष्टि के एकाग्र होने से मन धीरे-धीरे स्थिर होता है। तब मस्तिष्क में रक्त का संचार धीमा हो जाता है और उसके पश्चात् अंतर्मुखता की स्थिति आती है। जब अंतर्मुखता की स्थिति आये और उसे हम संभाल न सकें तो नींद आ जायेगी। उसको यदि संभाल लिया और सजग रहे तो फिर वह ध्यान हो जाता है। ध्यान और निद्रा में यही अंतर है कि निद्रा में हम अंतर्मुखी होते हैं, लेकिन मन के प्रति चेतन नहीं रहते। जबकि ध्यान में अपने इस अंतर्मुखी मन के व्यवहार को देखने के लिये चेतन रहते हैं, सजग रहते हैं।

हमारे गुरुजी कहते हैं कि एकाग्रता विस्मृति की अवस्था नहीं है। यदि आप धारणा की वस्तु के साथ सभी चीजों को भूल जाते हैं तब फिर वह शून्य अथवा लय की अवस्था है। एकाग्रता में मात्र एक वस्तु की सजगता रहनी चाहिये। यह सजगता धारणा की प्रक्रिया में यदा-कदा भंग होते भी रहती है। बाह्य आवाज सुनने या मन में आनेवाले विभिन्न विचारों के कारण सजगता भंग भी हो सकती है। सजगता भंग हुई फिर उसको हम खींच कर ले आये। प्रत्याहार में अगर एकाग्रता की अवधि दस सेकेण्ड है, उसके बाद मन डोलता है, तो धारणा में एकाग्रता की अवधि दस नहीं तीस सेकेण्ड है। उसके बाद मन डोलता है। जब यही अवधि तीस सेकेण्ड से एक मिनट, एक मिनट से पाँच मिनट, पाँच से पंद्रह मिनट हो जाए, तो जैसे-जैसे एकाग्रता की वृद्धि होती है और मन का डोलना कम होता है, वही धारणा की अवस्था फिर ध्यान में बदल जाती है।

ध्यान

अगले सूत्र में महर्षि पतंजलि ध्यान के बारे में बतलाते हैं – *तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्*। तत्र का मतलब वहाँ पर, और प्रत्यय का अर्थ होता है चेतना का आधार जो एक भाव, ध्वनि या स्थूल या सूक्ष्म वस्तु हो सकती है। यदि धारणा में चेतना अविरत हो जाती है ताकि किसी अन्य विचार के कारण अवरोध या क्रम भंग नहीं हो तब धारणा ध्यान में बदल जाती है।

धारणा करते समय कभी-कभी ध्यान का भी अनुभव होता है। यदि आप किसी वस्तु का मानस दर्शन कर रहे हैं तो आपको केवल उस वस्तु का मानस दर्शन नहीं करना चाहिये, आपको यह भी मानस दर्शन करना चाहिये कि आप धारणा का अभ्यास कर रहे हैं। यहाँ पर धारणा की सजगता की ओर संकेत दिया है कि मैं केवल उसमें रमा नहीं हूँ, बल्कि मुझे आभास है कि मैं उसमें रमा हूँ। मतलब अपना भी अनुभव हो रहा है, 'मैं हूँ'। मैं ध्याता हूँ, और जो मेरा ध्येय है उससे मैं जुड़ा हुआ हूँ। अपने-आपको भूलकर केवल ध्येय में ही लीन हो गये, तो वह धारणा नहीं है।

यहाँ पर द्रष्टा या साक्षी भाव का भी संकेत दिया जा रहा है कि उसके माध्यम से ही आप स्वयं का और अपने ध्येय का और दोनों के बीच एकाग्रता का जो संबंध बना है, इन सबका अलग-अलग अनुभव कर सकते हैं। और यह महत्त्वपूर्ण है।

कभी-कभी आप ध्येय वस्तु के प्रति विस्मरणशील हो सकते हैं पर वहाँ ध्यान की सजगता बनी रहती है जिसे साक्षी भाव कहते हैं। धारणा में आपका मन भटकता है तो आप उसे जान नहीं पाते जब तक साक्षी भाव नहीं है। जप करते समय मन भटकता है, मालूम भी नहीं पड़ता, कभी-कभी तो माला जपने के बाद मालूम पड़ता है कि हमने एक माला पूरी कर ली है। साक्षी भाव वहाँ पर नहीं है। केवल एक ऑटोमैटिक यांत्रिक क्रिया हो रही है। धारणा में बहुत बार जिस चीज पर हम अपने-आप को केन्द्रित कर रहे हैं वह ऑटोमैटिक होता है, और हम भूल जाते हैं कि हम कर रहे हैं और उसी में रम जाते हैं। लोग कह सकते हैं कि रमना तो अच्छा है, रम गये तो आनंद ही आनंद है, जो मिलना था वह तो मिल गया। लेकिन जो मिलना था वह आपको मिलेगा ध्यान में। धारणा में यदि रमते हैं और अपने को भूल जाते हैं तो पुन: साक्षी भाव को लाना पड़ता है। इसलिए धारणा की विधियों में इसी बात पर जोर दिया जाता है कि जो प्रक्रिया हो रही है उस पर पुन:केन्द्रित होकर साक्षी भाव को कायम बनाये रखो, कायम रखो।

यहाँ दो चीजें सम्मिलित हैं। पहली बात है, एकमात्र वस्तु की चेतना का अविरल, सतत् प्रवाह। मतलब जिस चीज को अपने ध्यान में ले लिये हैं, चाहे वे हमारे इष्ट हों, आराध्य हों, सूर्य हों, चन्द्र हों, जिस भी बिन्दु पर हम ध्यान कर रहे हैं, उसके साथ चेतना का निरंतर, अविरल संबंध बना रहे, और मन उससे विस्मृत न हो। मन वहाँ से हटे नहीं। दूसरी बात, आप सतत् धारणा कर रहे हैं, इसकी सजगता होनी चाहिये। मैं कर रहा हूँ, और जहाँ पर 'मैं कर रहा हूँ' की सजगता की बात आती है तो इसका अर्थ है साक्षी बनना, जानना कि मैं इस प्रक्रिया में संलग्न हूँ।

हमारे गुरुजी बतलाते थे कि जब आप ध्यान शुरू करते हो तो तीन चीजें एक साथ होती हैं। आप अपने शरीर को तैयार करते हो, आसन को तैयार करते हो, स्थिति को तैयार करते हो, वह एक बिन्दु है। शरीर को ध्यान के लिये अनुकूल बनाना। दूसरी चीज है ध्येय – जो लक्ष्य हम पाना चाहते हैं, अपने आराध्य, अपने गुरु, अपने इष्ट के स्वरूप पर स्वयं को केन्द्रित करना। और तीसरी चीज है वह प्रक्रिया जो हम अपनाते हैं। एक उदाहरण देता हूँ। हमलोग अजपाजप की साधना करते हैं। उसमें होता क्या है? सबसे पहले आप शरीर को संभालते हो, शरीर के प्रति सजग बनते हो। मैं क्या कर रहा हूँ? मैं कैसे बैठा हूँ? मैं क्या करना चाहता हूँ? यह सब पहले स्पष्ट होता है। उसके बाद अजपाजप के लक्ष्य तक पहुँचने का जो क्रम है उसे हम अपनाते हैं। श्वास का ख्याल करते हैं, नाभि से कण्ठ के बीच ऊपर-नीचे करते हैं, सोहं मंत्र का अनुभव करते हैं। यहाँ पर अब हमारा ध्यान शरीर से हटकर आया विधि में। सोहं, सोहं, सोहं करते-करते फिर जो अनुभव होता है वह हमारी प्राप्ति है। जब अनुभव होने लगता है तब फिर ध्यान वहाँ जाता है। जो एक नई चीज उभर रही है चेतना के स्तर पर, अब हमारा ध्यान वहाँ केन्द्रित होगा

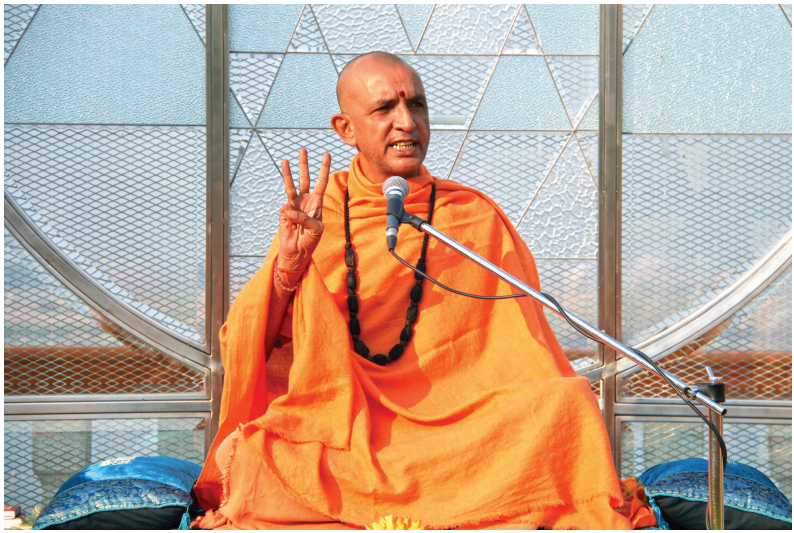

और उसमें रमेगा। ये तीन चीजें एक साथ होती हैं – शरीर का ख्याल, प्रक्रिया का ख्याल और अनुभव का ख्याल। ध्याता, ध्येय और ध्यान। ध्यान हुआ प्रक्रिया, ध्येय हुआ अनुभव और ध्याता हुआ शरीर।

शुरू में यह त्रैत भाव रहता है, फिर द्वैत भाव आता है। हम बैठ गये, प्रक्रिया सहज हो गई, सीधे अनुभव के क्षेत्र में प्रवेश कर गये, तो वहाँ पर विधि समाप्त हो गई। मैं और मेरा लक्ष्य, ये दो ही प्रधान होते हैं। उसके बाद तीसरी अवस्था में मैं भी खत्म हो जाता है और जो अनुभव है वह जागृत हो जाता है मेरे भीतर। ध्येय से मैं एकाकार हो जाता हूँ। उस समय शरीर का ख्याल नहीं है, विधि भी सहज हो गई है, स्वत: हो रही है। जिस चीज को मैंने अनुभव किया, अब मैं उससे एकाकार हो गया।

हमारे गुरुजी बतलाते थे कि इन तीन चीजों के योग से ही ध्यान शब्द का निर्माण होता है। ध्याता – व्यक्ति, ध्यान – विधि, ध्येय – लक्ष्य। जैसे-जैसे हम अपनी चेतना की गहराई में प्रवेश करते हैं, जैसे-जैसे इन्द्रियों का निग्रह होता है, जैसे-जैसे आत्मसंयम की स्थिति प्राप्त होती है, एक-एक चेतना धीरे-धीरे छूटती है। जब हम ध्यान की उच्च अवस्था में पहुँचते हैं तो केवल अपने ध्येय का ही ख्याल होता है।

इसी को प्रत्यय कहते हैं जो हमारी चेतना का आधार है। एक भाव आधार हो सकता है जो हम अनुभव करते हैं अपने आराध्य के प्रति। आखिर मीराबाई के जीवन में उनका प्रत्यय क्या रहा होगा? कृष्ण-प्रेम। आपके जीवन का क्या आधार है? धन-प्रेम। सामान्य व्यक्ति के जीवन का प्रत्यय तो वही है। एक भिखारी भी नोट की कामना करता है, एक सम्पन्न व्यक्ति भी। आदमी कुछ भी करेगा, आपको

जंगल से रास्ता भी बता देगा, फिर बाद में हाथ फैलाएगा, कुछ दे दो मेरे को, आपको रास्ता बताया। वहाँ सेवा या सहानुभूति नहीं है कि चलो आपको रास्ता बता दिया, नहीं, वह अपेक्षा रहती है कि अगर मैं आपके लिये कुछ कर रहा हूँ तो आप मुझे उसका मूल्य चुकाओ। यह प्रत्यय है, जिसे धन प्रत्यय या भोग प्रत्यय भी कह सकते हैं। लेकिन एक साधक के जीवन में जो प्रत्यय है, जो आधार है, वह परमार्थ प्रत्यय है। चाहे हम ईश्वर का अनुभव करना चाहें या अपने भीतर शान्ति का अनुभव करना चाहें वह भी परमार्थ है। जिस चीज में मन टिका हुआ है उसको कहते हैं प्रत्यय और उस प्रत्यय की अविरत धार ध्यान है।

प्रत्यय सकारात्मक भी होता है और नकारात्मक भी। जब आप किसी से द्वेष करते हो तो वह भी प्रत्यय है, क्योंकि उस व्यक्ति का नाम सुनते ही वही भाव उत्पन्न होगा, उस व्यक्ति का फोटो देखते ही वही भाव उत्पन्न होगा। वह वैर भाव उस व्यक्ति से इतना घुला-मिला है कि वह व्यक्ति उसी द्वेष के प्रत्यय रूप में आपके मन में निवास करता है, और कहीं से एक भनक मिल जाय उस नाम की तो प्रत्यय आपके पूरे मन, बुद्धि, भावना और विवेक को खींच लेता है।

जैसे भौतिक जगत् में होता है वैसे आध्यात्मिक जगत् में भी होता है। जैसे संसार के विषय हमको खींचते हैं वैसे ईश्वर भी खींचता है। संसार के विषय खींचते हैं क्योंकि हमारी इन्द्रियाँ उनसे जुड़ी हैं और ईश्वर हमको खींचते हैं क्योंकि हमारा मन उससे जुड़ा है। इन्द्रियों के कारण संसार में व्यापार होता है और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के कारण ईश्वर से सम्बन्ध बनता है। परमार्थ की ओर जाने वाला प्रवाह, जिसे हमलोग आध्यात्मिकता का प्रवाह कहते हैं, उसका प्रत्यय हमेशा सकारात्मक होता है। जबकि संसार की ओर जाने वाले प्रवाह का प्रत्यय हमेशा नकारात्मक होता है। यहाँ पर जो कहा जा रहा है कि ध्यान चेतना के प्रत्यय की अविरत धार है, वहाँ पर एक सकारात्मक चीज से अपने आपको हमें जोड़ना है ताकि वह प्रवाह सकारात्मक हो जाय। फिर उसमें ध्यान की स्थिति अपने आप आती है।

समाधि

उसके बाद समाधि के बारे में महर्षि पतंजलि एक सूत्र में ही समझा रहे हैं – *तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः*। वह अवस्था समाधि बन जाती है जब चेतना स्वानुभूति से रहित हो जाय और केवल ध्यान की वस्तु की ही प्रतीती रह जाय। मतलब लक्ष्य से एकाकार हो गया, विधि खत्म और ध्याता खत्म। जब चेतना अपनी ही अनुभूति से मुक्त हो जाय, अपने देह के अनुभूति, व्यक्तिगत अनुभूति से मुक्त हो जाय, सुख-दुःख, ठंढा-गरम, जो भी द्वैत की अनुभूति होती है, उससे मुक्त हो जाय और मन पूर्ण रूप से अपने लक्ष्य से एकाकार हो जाय, तब उस अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधि में 'मैं' नहीं रहता, न शरीर का ख्याल

होता है। बहुत बार जब हम कुछ अच्छा काम करते हैं या किसी कार्य के प्रवाह में मगन हो जाते हैं तो समय भूल जाते हैं। लगता है जैसे आधा घंटा ही बीता है, पर घड़ी देखने से मालूम चलता है अरे! तीन घंटे हो गये। आप इतने तन्मय हो गए कि आप समय भूल गये, खाना-पीना भूल गये।

यह तो केवल एक उदाहरण के रूप में कहा कि बहुत बार ऐसी स्थिति आती है दिन में, चेतनता की अवस्था में, कार्य करते समय, जो समाधि तुल्य अवस्था है। वही चीज जब हम अपने भीतर अनुभव करते हैं, स्थिर बैठे हैं, दर्द का आभास नहीं हो रहा है, कितने देरी से बैठे इसका अंदाज नहीं है, मात्र जिस पर हम ध्यान लगाये हैं उसी का अनुभव हो रहा है, वह समाधि है। जब आँखें खुलेंगी तब पता चलेगा कि पूरा शरीर अकड़ गया है। चार घंटे से बैठे हैं, शरीर अकड़ा हुआ है, पैरों को सीधा करने में दस मिनट का समय लगेगा, क्योंकि उस समय स्वानुभूति से आपकी चेतना हट गई थी और अगर स्वानुभूति से चेतना नहीं हटती तो एक मच्छर का काटना आपके मन को विचलित कर सकता है। अगर स्वानुभूति से चेतना हट गई तो आपके शरीर के चारों तरफ दीमक अपना मकान बना लेगा, आपको मालूम भी नहीं पड़ेगा। जैसे ऋषि-मुनियों का आप चित्र देखते होंगे कि मिट्टी के भीतर वे लोग दबे पड़े हैं, उनको अनुभव ही नहीं हो रहा है कि बाहर में क्या हो रहा है मेरे शरीर के साथ, वे उस अवस्था में इतने तन्मय और लीन हैं कि शरीर की अनुभूति, इन्द्रियों की अनुभूति, प्रकृति की अनुभूति का कोई असर नहीं होता है। वह स्थिति समाधि की है। खैर उस स्थिति में तो बहुत कम लोग जा पाते हैं और जो लोग गये हैं उन्हीं का मैं उदाहरण दे रहा हूँ, जो हमारे ऋषि-मुनि थे।

धारणा, ध्यान और समाधि – इनको आप इस रूप में देखिये कि धारणा में त्रैत है और त्रैत में अपने आपको स्थिर करना है – ध्याता, ध्येय और विधि में। ध्यान में द्वैत है, मैं और मेरा लक्ष्य – ध्याता और ध्येय, और समाधि में मात्र ध्येय, मेरा लक्ष्य है, यही रहते हैं, जिसको मैंने प्राप्त कर लिया।

समाधि के दो प्रकार

बहुत-से लोग इसको तपस्या रूप में अपनाते हैं। हमारे यहाँ पूर्व काल में एक संत थे जिनको मस्त कहते थे। मैं करीब तीस-चालीस साल पहले की बात कर रहा हूँ। श्वेत वस्त्र पहनते थे, दाढ़ी थी और इन्होंने एक सम्प्रदाय को जन्म दिया जिसको कहते थे मस्त सम्प्रदाय। जैसे पागल रहता है उस मुताबिक इनका रहना होता था। शरीर की परवाह नहीं, वस्त्र है नहीं है, खाये हैं नहीं खाये हैं, पानी पीये हैं नहीं पीये हैं, कुर्सी पर बैठे हैं या जमीन पर, फूलों के सिंहासन पर बैठे हैं या हाथी के लीद में, उनको कोई परवाह नहीं। मतलब पागल जैसा व्यवहार शारीरिक रूप से, लेकिन शरीर से उनका मन जुड़ा नहीं है, मन केवल ईश्वर में रमण कर रहा है। शरीर से चेतना

अलग है, इसलिये शरीर का जो व्यवहार हो रहा है वह मानो अनियंत्रित गुड्डे की तरह, रोबोट की तरह है जो इधर-उधर किये जा रहा है बिना किसी मानसिक नियंत्रण के। वे भी एक बहुत बड़े महात्मा रहे हैं अपने देश में और उन्होंने इस मस्त सम्प्रदाय को जन्म दिया।

उसके बाद पाश्चात्य देशों में भी वैज्ञानिकों ने शोध किया कि जो पागल होते हैं क्या वे आध्यात्मिक कारण से पागल हैं या मानसिक व्यवहार के कारण पागल हैं। बहुत बार पागलपन आध्यात्मिक कारण की वजह से भी होता है। कुछ अनुभूति हुई जिसको हम संभाल नहीं सके। एक व्यक्ति थे अमेरिका में जिनका नाम था डॉ. ली सेनेला, उन्होंने इसी विषय पर किताब लिखी – Kundalini: Psychosis or Awakening। कुण्डलिनी जागरण – यह वास्तव में अन्तर जागृति है या मन का भ्रम है। यह बहुत प्रसिद्ध किताब है, जिसमें उन्होंने अपना शोध प्रस्तुत किया है। उन्होंने पागलों पर शोध किया और पहचाना कि पचास पागलों में बीस की कुण्डलिनी जगी हुई है, इनका मेंटल हॉस्पिटल में इलाज नहीं करना चाहिये। बाकी तीस का वास्तविक पागलपन है, इनका जो करना है सो करो। उन्होंने एक अलग परम्परा शुरू की थी। डॉक्टर के रूप में इनका काम था कि हर मेंटल हॉस्पिटल में जाकर देखते थे कि कोई आदमी आध्यात्मिक रूप से जागृत है या मानसिक रूप से विक्षिप्त है, क्योंकि दोनों का व्यवहार समान होता है। पागलपन और मस्ती, दोनों का शारीरिक व्यवहार समान होता है।

बहुत-से साधु लोग भी बड़ा विचित्र व्यवहार करते हैं। टेढ़ा चलते हैं, सीधा चलते है, डंडा उठाते हैं, इधर पीटते हैं, उधर मारते हैं। बहुत-से साधुओं को ऐसा

व्यवहार रहता है कि अपने आप पर नियंत्रण नहीं रख पाते हैं। अपने यहाँ बाबा नित्यानंद जी थे, बाबा मुक्तानंद के गुरु, लोग उनको पागल कहते थे, लेकिन भारत के सबसे महान् सिद्ध संतों में उनका नाम आता है। वे रहते थे पहाड़ पर और लोग पगडंडी से उनके पास दर्शन के लिये जाते थे। वे चाहते थे कि कोई उनके पास नहीं आये। तो उन्होंने पत्थर रख लिये और जो भी आता, उसे पत्थर मारते थे। लेकिन लोगों का उनपर इतना अटूट विश्वास था कि अगर किसी को पत्थर लग जाय तो लोगों की मान्यता होती कि मेरा सब काम सिद्ध हो गया। पत्थर मरवाने के लिये लोग आने लगे, दर्शन के लिये नहीं! ऐसे विलक्षण प्रतिभाशाली महात्मा होते हैं जिनका व्यवहार समझना मुश्किल है, लेकिन ईश्वर में ही हमेशा रमण करते हैं। वह स्थिति है समाधि की। इस तरह समाधि भी दो प्रकार की है, एक मस्त और एक शान्त। जो मस्त हैं वे तो बेहपरवाह हैं और जो शान्त हैं वे संयमित हैं।

आगे कहा गया है, चौथे सूत्र में – *त्रयमेकत्र संयम:*। धारणा, ध्यान और समाधि – ये तीनों एक साथ संयम कहलाते हैं। संयम का मतलब हमने चेतना को अपने नियंत्रण में कर लिया है, अपने मन को अपने वश में कर लिया है। अब इसका डोलना नहीं, अब वह अपने बिन्दु पर स्थिर हो गया है, केन्द्रित हो गया है, एकाग्र हो गया है। उसको कहा जाता है संयम, और इस संयम का परिणाम क्या होता है? *तज्जयात्प्रज्ञालोक:*। संयम को सिद्ध कर लेने पर फिर प्रज्ञा का आलोक प्रकट होता है। जब धारणा, ध्यान और समाधि सिद्ध हो जाये, एकाग्रता स्थिर हो जाये, तन्मयता बनी रहे तब फिर ज्ञान का आलोक, अविद्या का नाश और गुरुत्व की प्राप्ति होती है।

– 28 जुलाई 2016, पादुका दर्शन

मुक्ति का मार्ग

एक आदमी एक सन्त के पास आकर विनयपूर्वक बोला – 'महापुरुष! मुझे मुक्ति का मार्ग बतलाइये।'

सन्त बोले – 'जा, कब्रिस्तान में जा और सब कब्रों को गाली देकर आ।'

उस आदमी ने वैसा ही किया।

दूसरे दिन सन्त ने उसे सब कब्रों की स्तुति कर आने के लिए कहा। आदमी ने उस आज्ञा का भी पालन किया। तब सन्त ने उससे पूछा, 'किसी ने तेरी गाली या प्रशंसा के जवाब में कुछ कहा?'

'किसी ने कुछ नहीं कहा, महाराज!'

'तू भी इन सभी मरणशील लोगों के बीच मान-अपमान में इसी प्रकार अलिप्त रह। यही मुक्ति का मार्ग है,' सन्त बोले।

धारणा की प्रक्रिया

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

अष्टांग योग में साधक को सबसे पहले यम-नियम के अनुशासनों में निपुणता प्राप्त करने को कहा जाता है। उसके बाद उसे आसन और प्राणायाम की विधियों में दक्षता प्राप्त करनी होती है। इससे ऊर्जा के प्रवाह को जागृत करके चेतना के उच्चतर केन्द्रों की ओर प्रेषित किया जाता है। इसके बाद उसे प्रत्याहार को सिद्ध करना पड़ता है, अर्थात् इन्द्रियों एवं चेतना को बाह्य विषयों से खींचना और उन्हें अन्दर की ओर मोड़ना होता है। तब धारणा में चेतना को उस वस्तु पर केन्द्रित करना है जिसे साधक मानसिक रूप से मूर्त्त रूप देना चाहता है। अन्तर मात्र इतना ही है कि जिस भी वस्तु को वह मूर्त्त रूप देता है वह भौतिक तत्त्वों की नहीं, बल्कि चेतना की बनी होती है। बाद में जब साधक इस विद्या में निपुण हो जाता है, तब वह इन वस्तुओं को इस भौतिक जगत् में भी मूर्त्त रूप दे सकता है। अनेक योगियों ने यह अवस्था प्राप्त की है।

धारणा का शाब्दिक अर्थ है पकड़कर रखना या अधिकार बनाए रखना। धारणा की अवस्था तब प्राप्त होती है जब अन्य सभी कुछ को चिदाकाश, अर्थात् चेतना के आकाश में छोड़कर हम किसी एक चीज को पकड़ सकते हैं या अधिकार में रख सकते हैं। धारणा में सिद्ध होने पर हम ध्यान की ओर बढ़ते हैं जो धारणा के लक्ष्य में पूर्ण एवं स्वत: अन्तर्लीनता की स्थिति होती है। धारणा किसी वस्तु पर चेतना का संकेन्द्रण है और ध्यान उस वस्तु का सम्पूर्ण एवं अबाध बोध है, यह

बोध चाहे रूप का हो, या विचार का या मनोभाव का या किसी कर्म या अनुभव का। इस अवस्था की प्राप्ति के लिए आप किसी वस्तु का चयन कर सकते हैं जो सहजता से एवं सम्पूर्णता से आपके शरीर, मन और आत्मा को अन्तर्लीन कर ले। इस अन्तर्लीनता के बाद समाधि की स्थिति आती है, जो पूर्ण प्रदीप्ति की अवस्था है।

इससे हम यह समझ सकते हैं कि ज्ञानोदय के मार्ग में धारणा का अभ्यास कितना महत्त्वपूर्ण है। धारणा में पूर्णता की प्राप्ति किए बिना इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हो सकती। वास्तव में जब एक बार धारणा में सिद्धि प्राप्त हो जाती है तब साधक को ज्ञानोदय की प्राप्ति के लिए अन्य कोई प्रयास नहीं करना होता। ध्यान और समाधि धारणा के ही स्वाभाविक परिणाम हैं। यदि किसी प्रयास के करने की आवश्यकता है भी तो वह मात्र हमारे दैनिक जीवन में उस अनुभव को बनाए रखने के लिए ही है।

साधना के परिपेक्ष्य में धारणा एक उच्चतर आयाम में पारगमन का द्योतक है, जहाँ चेतना सभी इन्द्रियों से खिंच कर एक बिन्दु पर निश्चित रूप धारण कर लेती है। अन्य समय में यह अत्यन्त बिखरी एवं छितरायी हुई होती है और जहाँ पर मन चाहे वहीं अटक जाती है और फिर उसे छोड़ दूसरे पर चली जाती है। धारणा किसी एक चयनित वस्तु पर अपनी चेतना को बिना उथल-पुथल के केन्द्रित करना सिखाता है। यह सोचने या मनन करने की नहीं, बल्कि देखने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में मन की कोई भूमिका नहीं होती। जब मन सक्रिय रहता है तो धारणा नहीं हो सकती। धारणा में चेतना की क्षमता, जो मन से अधिक सूक्ष्म है, सक्रिय हो जाती है। जिस विषय-वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करना है, चेतना में उसे प्रदीप्त कर देने की शक्ति होती है। आप स्वयं इसे करके देख सकते हैं। जब भी आपको किसी समस्या का समाधान करना हो, पहले अपने मन को शान्त करें और फिर अपनी चेतना को उस विषय पर केन्द्रित करें। आप अवश्य ही समस्या का समाधान पा जायेंगे।

धारणा उसी चेतना का उपयोग करता है जिसे आप दैनिक जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए केन्द्रित करते हैं। आपको उसी चेतना को प्रशिक्षित करना है जिससे वह अन्दर की ओर एक बिन्दु पर केन्द्रित हो सके। एक बार जब आप ऐसा करने में सक्षम हो जाते हैं तब वह आन्तरिक पथ जिस पर आप अग्रसर होना चाहते हैं, और जो बाद में आपका गन्तव्य होगा, धीरे-धीरे स्पष्ट हो जाएगा। पहले वह अन्दर का बिन्दु धुंधला और अनजाना-सा लग सकता है, परन्तु बाद में यह आपकी चेतना को इतना आकर्षित कर लेगा जैसा पहले कभी नहीं हुआ। इसलिए कि यह आपके अन्तरतम में एक आनन्द की अनुभूति उत्पन्न करता है। उस समय आप सुख, प्रेम, एकत्व एवं समग्रता की अनुभूति से अभिभूत हो जायेंगे, किन्तु जब तक ऐसी स्थिति नहीं आती, आप अपनी साधना जारी रखें। धारणा एक अमूल्य उपलब्धि है जो अन्य सभी से श्रेष्ठ है। यह मानवीय सफलता का शिखर है।

बच्चों के लिए स्वावलम्बन की शिक्षा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बच्चों, स्वावलम्बन महत्त्वपूर्ण गुण है। इससे व्यक्ति को आन्तरिक शक्ति प्राप्त होती है। लौकिक और आध्यात्मिक – दोनों प्रकार की सफलताओं को पाने के लिए यह एक अनिवार्य गुण है। प्राय: देखा जाता है कि अधिकांश मनुष्य सदा दूसरों पर आश्रित और निर्भर रहते हैं। उनमें स्वावलम्बन का बल नहीं रहता। भोग-विलास की आदत ने मानव समाज को बहुत निर्बल बना दिया है। डॉक्टर और वकील को जूते पहनाने के लिए भी नौकर चाहिए, अपने हाथ से पहनना उनकी शान-शौकत से बाहर की बात है। कुएँ से पानी खींचना उनकी इज्जत पर बट्टा लगाने के समान है। चलने के लिए भी उन्हें सवारी चाहिए, पैदल नहीं चल सकेंगे।

हमारे पूर्वज अपने कपड़े स्वयं ही धोया करते थे। लकड़ी फाड़ना, चक्की चलाना, गाय को चारा-पानी देना, खाद उठाना, रसोई करना जैसे सभी प्रकार के काम वे अपने हाथों ही कर लिया करते थे। उनकी शक्ति और चुस्ती-फुर्ती के क्या कहने, दिन में चालीस मील चलना उनके लिए जरा भी कठिन नहीं था! उनकी शारीरिक शक्ति आश्चर्यजनक हुआ करती थी। उनके जीवन की अवधि नब्बे साल से कम तो किसी हालत में नहीं हुआ करती थी, वह भी स्वस्थ और आरोग्य जीवन। आजकल की तरह वे किसी भी रोग से आक्रान्त नहीं रहते थे।

लेकिन आजकल वैसा कहाँ? व्यक्ति हर बात के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है। स्वावलम्बन का सद्गुण अब समाज में नहीं रहा। आत्म-शक्ति से मनुष्य अनभिज्ञ होता जा रहा है। आत्मा के अन्दर शक्ति का जो अमित भण्डार छिपा पड़ा है, आज मनुष्य को उसका कुछ भी पता नहीं। मनुष्य का मन सदा चंचल रहता है, उसका जीवन एकदम आवारा हो गया है। बेचारी जड़ मशीन को ही सर्वसमर्थ कहने और मानने चला है आज का नपुंसक समाज!

लोगों को अपना भोजन अपने हाथों बनाना चाहिए। नौकरों से काम कराने की आदत छोड़ देनी चाहिए। अपने वस्त्र अपने हाथों से धोने चाहिए। नित्यप्रति कार्यालय में पैदल जाना चाहिए। झूठी इज्जत और शान को बनाए रखने के लिए दूसरों के साथ अन्याय या अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिए। बच्चों, जहाँ तक बन सके अपना काम खुद करने की आदत डालनी चाहिए।

एक लगनशील बालक का वृत्तान्त सुनाता हूँ। उस बालक की विद्यार्जन में बहुत रुचि थी। वह बहुत परिश्रमी भी था, लेकिन गरीब होने के कारण उसे किताबें और लालटेन जलाने के लिए तेल हासिल करने के लिए बहुत हाथ-पैर मारने पड़ते थे। एक रात उसे एक अजीब स्वप्न आया। स्वप्न में देवी सरस्वती प्रकट हुयीं और बोलीं, 'बेटे, मैं तुम्हारी लगन से बहुत प्रसन्न हूँ। जरा अपना मुँह खोलो, मैं समस्त ज्ञान और विद्या का निचोड़ लिए एक गोली उसमें डाल दूँगी। फिर तुम्हें विद्यार्जन के लिए इतने हाथ-पैर नहीं मारने पड़ेंगे और तुम आराम से जीवन-यापन कर सकोगे।'

बच्चों, जानते हो उस बालक ने क्या जवाब दिया? उसने कहा, 'देवी माँ, क्षमा करें, मैं नहीं चाहता कि मुझे किसी चमत्कार द्वारा विद्या प्राप्त हो। मुझे मुँह में थूका हुआ ज्ञान नहीं चाहिए। यदि आप सचमुच मेरी सहायता करना चाहती हैं, तो मुझे रात में लालटेन जलाने के लिए थोड़ा तेल दिलाने की कृपा करें!' देवी मुस्कुरायीं, स्वप्न वहीं समाप्त हो गया और वह बालक आगे चलकर अपने युग का सर्वश्रेष्ठ विद्वान् बना।

यही नियम आध्यात्मिक जीवन में भी लागू होता है। कुछ गृहस्थ आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए संन्यासियों से जादू की गोली माँगते हैं। वे अपने आप कुछ भी साधना नहीं करना चाहते। बस दूसरे लोग किसी प्रकार उनके लिए वह काम कर दें, ऐसी उनकी भावना रहती है। यह शोचनीय है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिए साधना खुद करनी होगी और स्वयं ही अपने पाँव आध्यात्मिक सोपान पर रखने होंगे। तुम ही अपने भाग्य के विधाता हो। इस बात को सदा याद रखो। कोई दूसरा तुम्हारी मदद नहीं कर सकता। जो दूसरों की ओर मदद के लिए ताकते रहते हैं, निश्चित मान लो कि वे जीवन में कभी सफल नहीं हो सकते। बच्चों, एक कहानी से इस बात को और स्पष्ट कर देता हूँ।

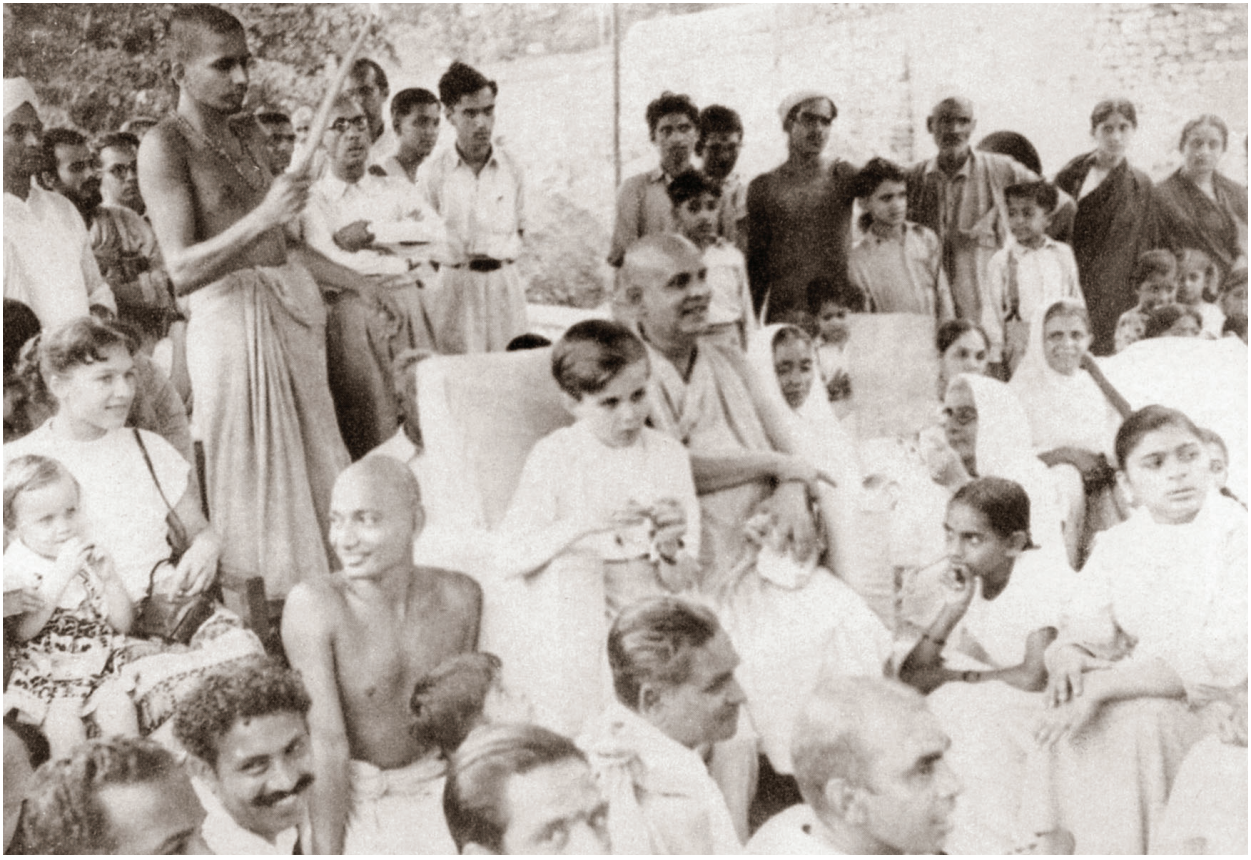

एक बार की बात है, एक चिड़िया अपने दो नन्हें चूजों के साथ किसी किसान के खेत में रहा करती थी। हर दिन सबेरे वह अपने और अपने बच्चों के लिए भोजन की तलाश में जाती और शाम को लौटती। एक शाम जब वह भोजन लेकर वापस आई तो उसने देखा कि दोनों बच्चे बहुत उत्तेजित थे। कारण पूछने पर वे बोले, 'माँ, कल इस खेत की फसल काटी जाएगी। अब हम क्या करेंगे, कहाँ जाएँगे?'

चिड़िया ने बच्चों से पूछा, 'तुम्हें यह बात कैसे मालूम चली?' चूजों ने कहा, 'हमने अपने कानों से खुद सुना है। आज किसान खेत में आया था और उसने अपने रिश्तेदारों को कल खेत काटने के लिए कहा है। हाय! अब हमारा क्या होगा?'

चिड़िया ने कुछ क्षण सोच-विचार किया और फिर कहा, 'मेरे प्यारे बच्चों, चिन्ता की कोई बात नहीं, तुम बिल्कुल मत घबराओ। किसान के रिश्तेदार यह खेत कभी नहीं काटेंगे, तुम लोग बिल्कुल सुरक्षित हो, जाओ खुश रहो।'

दूसरे दिन जब चिड़िया भोजन लेकर वापस आई, दोनों चूजे फिर काफी उत्तेजित थे। वे बोले, 'माँ, माँ, आज किसान फिर आया था। आज उसने अपने बेटों से कहा है कि कल खेत काटने में वे लोग उसकी मदद करें। अब हमारा क्या होगा?'

यह सुनकर चिड़िया हँसते हुए बोली, 'प्यारे बच्चों! हम लोग अब और ज्यादा सुरक्षित हैं। किसान के बेटे खेत काटने में उसकी कोई सहायता नहीं करेंगे। तुम लोग व्यर्थ चिन्ता मत करो और मस्त रहो।'

तीसरे दिन जब चिड़िया वापस आई तो बच्चों ने बतलाया, 'माँ! आज वह किसान फिर से खेत पर आया था और बोल रहा था कि मुझे किसी की मदद का मोहताज नहीं होना है। बस यह खेत मैं कल खुद ही काटूँगा।' यह सुनते ही चिड़िया बोली, 'अब यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं। हमें तुरन्त यह स्थान छोड़ना पड़ेगा और कहीं और जाकर अपना घर बनाना पड़ेगा। किसान कल जरूर आयेगा और इस खेत की फसल काट डालेगा, क्योंकि उसने ऐसा खुद करने का निर्णय लिया है। वह अब किसी और पर निर्भर नहीं है।' ऐसा कहकर चिड़िया ने अपने घोंसले को पास के ही एक खेत में हटा लिया और दूसरे दिन वास्तव में ही उस किसान ने आकर फसल काट डाली।

तो बच्चों! इस कहानी से तुम क्या सीखे? अपने आप पर निर्भर होना ही किसी भी कार्य में सफलता की कुंजी है। जो लोग अपना काम दूसरों के सहारे छोड़ देते हैं, उनका काम कभी नहीं हो पाता है। इसलिए तुम सभी आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनो और जीवन में बेशुमार सफलता प्राप्त करो।

अभिभावकों के लिए सन्देश

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

प्रत्येक अभिभावक का यह दायित्व बनता है कि जब बच्चे पैदा हों, उन्हें आध्यात्मिक संस्कार दें, आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा-दीक्षा दें। धार्मिक जीवन की नहीं, आध्यात्मिक जीवन की। तुम्हारा हर बच्चा एक अनुपम प्रयोग है। जो भी बच्चा माँ के गर्भ से पैदा होता है, वह एक दिव्य अवतार होता है। माँ जिसे जन्म देती है, वह ईश्वर की कृति है, दिव्यता का अवतरण है वह। रचना तो उस भगवान की है, तुम तो मात्र एक प्रयोग करते हो। अब वह रचना अपना वास्तविक स्वरूप कैसे जानेगी? कैसे वह बच्चा महापुरुष बनेगा? महापुरुष स्कूलों और कॉलेजों में नहीं बनते। वहाँ तो डिग्रीधारी वकील, अफसर, प्रोफेसर बनते हैं। वह भी आवश्यक है, मैं उसकी निन्दा नहीं कर रहा हूँ, मगर कुछ बनने के लिये उसके अन्दर एक अनूठा व्यक्तित्व होना चाहिए। जिस बच्चे को हमेशा माता-पिता का लाड़-प्यार मिलता रहा है और जिसने अपना आनन्द खुद नहीं खोजा, वह हमेशा माता-पिता का पीछा करता रहेगा। नहीं, ऐसा नहीं, एक सुदृढ़ व्यक्तित्व होना चाहिए। छत्रपति शिवाजी की माँ जीजाबाई उनको कितना प्रशिक्षण देती थीं। महाराणा प्रताप, महाराजा छत्रसाल, ये सब महापुरुष कैसे बने?

जैसे एक बढ़ई लकड़ी के एक टुकड़े को लेकर उसको काटता है, रेतता है, तराशता है और अंत में एक सुन्दर फर्नीचर तैयार करके तुमको देता है, उसी प्रकार

एक मूर्तिकार एक पत्थर को लेकर उसे छेनी-हथौड़ी से तराश-तराश कर श्री राम की या कृष्ण जी की एक सुंदर मूर्ति तैयार करता है। मूर्ति तो पत्थर ही है, परन्तु एक कुशल कलाकार उसको सुन्दर, सजीव रूप दे देता है। ऐसे ही माता-पिता को कलाकार, मूर्तिकार होना चाहिए, तोते की तरह 'बेटा पढ़ो, अच्छे बनो' की रट लगाये रहने वाला नहीं। बच्चों को अपने व्यक्तित्व का विकास करने की स्वतंत्रता देनी चाहिए।

अभिभावक अपने बच्चों को अपने अहम् की तुष्टि का साधन बनाकर रखना चाहते हैं, 'मेरे बच्चे के कारण मेरी बदनामी न हो, बल्कि लोग कहें – उनका बेटा, अरे वाह! और मेरा सीना फूलकर चौड़ा हो जाए।' बच्चे इसके लिये थोड़े ही हैं। वे तो तुम्हारे सामने अनगढ़ पत्थर के समान हैं। कच्चामाल भगवान तुमको देता है, अब तुम उसको सुन्दर रूप दो। अपनी कमजोरियों को अपने बच्चों पर मत लादो।

बच्चों की शरारत को मैं उनका नकारात्मक पहलू नहीं मानता। यदि उन्हें शरारती नहीं होने दिया जाएगा, यदि उन्हें दमित और नियन्त्रित किया जाएगा, तो आगे चलकर वे विद्रोही या अभद्र लड़के बन जाएँगे, तब उनके माता-पिता भी उन्हें नियन्त्रित नहीं कर सकेंगे। बाहर में बच्चे खेलते हैं, शरारतें करते हैं, थककर चूर हो जाते हैं और गहरी नींद में सोते हैं, किन्तु इस प्रकार की शरारत बाल-लीला है, उन्हें इस प्रकार की शरारतें करने देनी चाहिए।

बच्चों में अतिरिक्त ऊर्जा होती है, इसलिए उन्हें खेलना और दौड़ना चाहिए। उनकी ऊर्जा को संतुलित होना चाहिए। बच्चों के लिये अधिक पढ़ना ठीक नहीं है, किन्तु भारत समेत अन्य समस्त देशों में माता-पिता की एक बुरी आदत है। हर समय बच्चों से कहते हैं, 'तुम पढ़ नहीं रहे हो, क्या तुमने अपना होमवर्क कर लिया?' बच्चों से यह कभी नहीं कहा जाता कि तुम बाहर जाकर थोड़ा फुटबॉल खेलो। बच्चों की चेतना में अशुद्धि नहीं होती। उनकी चेतना का स्तर बहुत ऊँचा होता है, वे ईश्वर के बहुत निकट होते हैं।

मेरी राय में खेलकूद एवं मनोरंजन को शिक्षा में एक विषय का स्थान मिलना चाहिए। इसके लिए व्यावहारिक खेलकूद होने चाहिए और छात्रों को उनके अंक प्रदान किये जाने चाहिए। खेलकूद, नाटक और संगीत के विषयों में निश्चित रूप से प्रतियोगितायें भी आयोजित की जानी चाहिए। इस प्रकार रचनात्मक एवं बौद्धिक के साथ-साथ शारीरिक और आध्यात्मिक विकास की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

बच्चे डिग्री से या केवल पढ़ने से महान् नहीं होते। वे अपने मन-मस्तिष्क, बुद्धि, ग्रहणशीलता, अभिव्यक्ति और रचनात्मकता की विशेषताओं के कारण महान् होते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आप कितना ग्रहण कर सकते हैं, कितना धारण कर सकते हैं और कितना दूसरों को प्रदान कर सकते हैं। आप बतायें कि न्यूटन की योग्यता क्या थी, क्या वे विश्वविद्यालय के स्नातक थे? ईसामसीह कभी किसी कॉलेज में नहीं गये, न ही मोहम्मद साहब किसी मदरसे में पढ़ने गये। स्वामी

निरंजन के बारे में तो मैं जानता हूँ कि वह कभी किसी स्कूल में पढ़ने नहीं गया, उसने स्कूल तब देखा, जब वह वहाँ योग सिखाने जाता था। उसे पहला दायित्व उत्तरी आयरलैण्ड में मिला। जब मैं उसे वहाँ ले गया, वह मात्र दस साल का था।

न तो ईसामसीह स्कूल गये, न ही स्वामी निरंजन। ईसामसीह तो एक बढ़ई के लड़के थे। पैगम्बर मुहम्मद भी एक बहुत ही साधारण व्यक्ति थे। सभी साधारण व्यक्ति थे, परन्तु आत्म ज्ञान से इसका क्या सम्बन्ध? वह तो किसी को भी मिल सकता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि आप अध्ययन नहीं करें। अध्ययन करना तो बिल्कुल ठीक है। व्यक्ति को योग्यता या उपाधियाँ प्राप्त करनी ही चाहिए, क्योंकि यह आज की विश्वव्यापी परम्परा या प्रवृत्ति हो गयी है। हमें इस प्रवृत्ति के अनुकूल चलना ही चाहिए, किन्तु बच्चों से हमेशा यह कहते रहना कि क्या तुमने अपना होमवर्क कर लिया, ठीक नहीं है। बच्चे परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त नहीं कर पाते, तो वे आतंकित हो जाते हैं। वे सोचने लगते हैं कि पापा क्या कहेंगे, मम्मी क्या कहेंगी, आदि-आदि। यदि वे फेल हो जायें, तो भगवान ही रक्षा करें! माता-पिता को बच्चों को आश्वस्त करना चाहिए कि हम तुम्हें स्कूल में केवल प्रवेश दिला रहे हैं। यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि तुम 'पास' हो या 'फेल'। तुम्हारे बच्चे स्कूल जाते हैं तो उन्हें डर लगा रहता है कि पता नहीं, फेल हो जायेंगे तो क्या होगा। पिता को कहना चाहिए कि फेल हो गये तो क्या होगा, दुबारा पढ़ना। किन्तु माता-पिता में इतनी हिम्मत नहीं कि बच्चों को ऐसा कह सकें। कुछ बच्चे प्रथम श्रेणी के फेरे में रहते हैं। सोचते हैं कि यदि द्वितीय श्रेणी मिल गयी तो पापा को क्या मुँह दिखलायेंगे?

आप बच्चों में ये जो कमजोरियाँ डाल रहे हैं, इनसे उनका व्यक्तित्व खण्डित हो जाता है। बच्चों से कहना चाहिए कि अरे बेटा पढ़ो, लेकिन ज्यादा झंझट नहीं, परेशान होने की जरूरत नहीं। शाम को खेलो, सुबह में खेलो, खूब खेलो। खेलकूद से बच्चों की स्नायविक ऊर्जा सन्तुलित होती है, उनके सम्पूर्ण शरीर में रक्त का अच्छा संचार होता है। अन्यथा बच्चा दिन भर टेलिविजन के पास बैठा रहता है, टेबल पर एक पैर डालकर पढ़ता रहता है, उसका रक्त गन्दे पानी की अवरुद्ध नाली की तरह धीमे-धीमे प्रवाहित होता है। उसका दिमाग काम नहीं करता है। घर में शिक्षक बुलाना पड़ता है। इससे तो अच्छा है कि उसे पढ़ाइये ही नहीं। बच्चों की स्मरणशक्ति तेज होती है। सिनेमा का गाना तो एक बार में याद हो जाता है, किन्तु स्कूल की पुस्तक बिना ट्यूटर या निजी शिक्षक के याद नहीं होती।

यह स्थिति देखकर मुझे बहुत दु:ख होता है। बच्चों को खूब खेलना चाहिए। लड़कियों को भी खेलना चाहिए, क्योंकि सन्तान को ये ही पैदा करती हैं। यदि मशीन घटिया होगी, तो माल भी घटिया होगा। उत्तम माल पैदा करने के लिये मशीन मजबूत होनी चाहिए। अत: लड़कियों को भी खूब व्यायाम करना चाहिए।

उन्हें अपनी शारीरिक बनावट तथा प्रजनन क्षमता को ध्यान में रखते हुए कुछ व्यायाम अवश्य करने चाहिए।

आप तो जानते हैं कि जननी एक शरीर की जन्मदात्री होती है। वह शरीर उसके अन्दर पलता है, उसका पोषण होता है, और जो द्रव्य, विष या अमृत उसके अन्दर होता है, उसका बच्चे पर प्रभाव पड़ता है। शक्ति और बुद्धि तो मिलती ही है, रोग भी मिलता है। इसे विज्ञान में कहते हैं, अनुवांशिक हस्तांतरण। हम सब अनुवांशिक हस्तांतरण के परिणाम हैं। अत: लड़कियों को और महिलाओं को भी व्यायाम करना चाहिए, घूमना-फिरना और टहलना चाहिए।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तुम्हारे बच्चे अवश्य यह सोचते हैं कि वे तुमसे ज्यादा जानते हैं, वे तुमसे कहीं अधिक ठीक हैं। बच्चा हमेशा यह सोचता है कि मैं अपने माता-पिता से अधिक जानता हूँ। मैं अपने माता-पिता से ज्यादा ठीक हूँ। एक बार जब वे यह सोचना शुरू कर देते हैं कि मैं ठीक हूँ, माता-पिता नहीं, तब तुम उन्हें कैसे सुधार सकते हो? अगर तुम बच्चों को वश में रखना चाहते

हो, अगर तुम उन्हें नियन्त्रण में लाना चाहते हो, अगर तुम उनके कर्मों एवं शक्तियों को दिशा देना चाहते हो, तो तुम्हें उनसे असहमत नहीं होना है।

माता-पिता को चाहिए कि अपने बच्चों के साथ जमाने की बदलती हुई सभ्यता के अनुसार व्यवहार करें। तुम खुद शैतान हो, झूठ बोलते हो और बच्चों से कहते हो, झूठ मत बोलो। खुद घूस लेते हो और बच्चों से कहते हो घूस मत लो। इसलिए बच्चों के साथ जो भी व्यवहार हो, बहुत सावधानी के साथ करना होगा। वह पिटाई वाला व्यवहार अब नहीं चलेगा। बच्चों को अपने से छोटा मत समझो। बच्चे कभी अपने को तुमसे छोटा नहीं समझते। तुम अपने बच्चे से कभी एकान्त में पूछना, प्रेम से और हृदय से, तब वे दिल खोलेंगे। वे चुप हो जाते हैं क्योंकि तुम उनको थप्पड़ लगा-लगाकर पूछते हो। मगर वे अपने मन में सोचते हैं कि पापा ऐसा क्यों बोलते हैं, मम्मी ऐसा क्यों बोलती हैं।

बच्चों का दिमाग बहुत तेज होता है। बच्चे को ठीक तरह से समझो, उसके व्यक्तित्व को विकसित करने का प्रयास करो। बच्चों के साथ तुम प्रयोग करो। तुम बराबर यह सोचो कि बच्चे तुम्हारे लिए प्रयोग की सामग्री हैं। बच्चे बहुत प्रतिभाशाली होते हैं, इसलिये तुम उनका प्रयोग कर सकते हो। मगर एक ही चीज है, बच्चे को यह कभी नहीं बोलना कि यह मत करो। अगर तुम बच्चों को रोज आधा घण्टा बैठकर बोलो, 'बेटा सिगरेट नहीं पीना, बहुत खराब चीज है।' तो एक दिन वह सिगरेट ही पहले पीना शुरू करेगा। इसी को कहते हैं नकारात्मक सुझाव। बच्चों को नकारात्मक सुझाव कभी नहीं देना। जब तुम्हें मालूम हो कि सुझाव कैसे दिया जाता है, तब केवल सकारात्मक सुझाव देना। माता-पिता को बच्चों पर विश्वास रखना चाहिए, तभी बच्चों में अच्छा चरित्र आ सकता है।

बच्चों को कैसे शिक्षित करें

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

भविष्य का समाज बच्चों पर आश्रित है, इसलिए बच्चों को वह अवसर प्रदान करना चाहिए जिसमें उनकी प्रतिभा का विकास हो। क्या हम यह जिम्मेदारी, यह दायित्व निभा सकते हैं, जिसके द्वारा हम भविष्य के समाज का निर्माण कर सकें? हम चाहते हैं कि हमारा बच्चा अच्छा बने, आज्ञाकारी बने, बुढ़ापे का सहारा बनें। हम चाहते हैं कि हमारा बच्चा हरिश्चन्द्र बने, श्रीराम और श्रीकृष्ण की तरह बने, लेकिन हम उन्हें यह अवसर प्रदान नहीं करते, क्योंकि हमें तो उसकी शिक्षा मिली नहीं, और जो शिक्षा एक आदर्श के रूप में हमें बतलायी गयी थी, उसको हमने आज तक अपने जीवन में उतारा ही नहीं। इसलिए गलती हम लोग करते हैं जो अपने बच्चों को सही रूप से विकसित नहीं होने देते। लेकिन अगर हम उन्हें थोड़ा-सा प्रेम दें और उनके साथ थोड़ा विद्वत्तापूर्ण आचरण कर सकें, तो फिर वही प्रेम और विद्वत्ता उनके जीवन में नये संस्कार लाने में कारगर सिद्ध होगी।

मित्रता का सम्बन्ध

माता-पिता और बच्चे, जब हम इन्हें एक साथ देखते हैं कभी-कभी ऐसा लगता है कि बच्चा कटघरे में खड़ा हुआ एक चोर है और अभिभावक दण्डाधिकारी। आज यही एक सम्बन्ध रह गया है अपने बच्चों के साथ। बच्चा कटघरे में खड़ा रहता है, हम उसे सुनाते रहते हैं, 'तुम ऐसा करते हो, तुमको ऐसा नहीं करना चाहिए।' दुनियाभर का सबक उसे सुनाते रहते हैं। क्या इस प्रकार का सम्बन्ध, इस प्रकार का रिश्ता एक बच्चे के साथ उचित है? गुरुजी हमेशा कहा करते थे कि बच्चों को स्वतन्त्र रूप से विकसित होने दो। गड़बड़ करें, कोई बात नहीं, करने दो। सामान तोड़ते हैं, कोई बात नहीं, तोड़ने दो। बात नहीं मानते हैं, कोई बात नहीं, नहीं मानने दो। लेकिन बच्चों को बदलने का प्रयास मत करो। अगर किसी को बदलने का प्रयास करना है, तो खुद को बदलने का प्रयास करना है, क्योंकि बच्चा तो उस प्रकार से इसलिए रहता है कि आप उसके मित्र नहीं बन पाते हैं। आप हमेशा जज बने रहते हैं, और जज के सामने चोर करता क्या है? यस सर, यस सर, कहता है। लेकिन वहाँ से निकलकर फिर वही काम करता है।

गुरुजी का मत शुरू से स्पष्ट रहा है बच्चों को स्वतन्त्र रूप से विकसित होना है। किसी प्रकार का बन्धन या रोकटोक नहीं, और आपको बच्चों का मित्र बनना है। जब बच्चों को कुछ तकलीफ या समस्या होती है वे कहेंगे किसको? जब बच्चों से कोई गलत काम हो जाता है तो डर के मारे किसी से कहते नहीं हैं, क्योंकि उनको

मालूम रहता है कि अगर हम अपने माता-पिता से कहेंगे तो हमको डाँट मिलेगी। और उनके जो मित्र होते हैं, उसी उमर के होते हैं। उनसे भी गलतियाँ होती हैं। तो क्या अपने मित्र से वे किसी प्रकार का सुझाव ले सकते हैं? जो स्वयं गलती कर रहे हैं, वे दूसरों को किसी प्रकार का सुझाव दे सकते हैं? इसलिए वे किसी से नहीं कहते।

आज बच्चों के जीवन में अकेलापन बहुत है। आप लोगों ने तो उनको पूँजी बना लिया है। लड़का होगा तो हम धनी होंगे और लड़की होगी तो गरीब होंगे। जैसे बैंक का खाता खोलते हैं, वैसे ही बच्चों के जीवन को आप देखते हैं। किससे लाभ होगा, किससे हानि होगी। और ऐसी मानसिकता को धारण कर अगर आप एक आदर्श समाज स्थापित करना चाहते हैं तो कभी सफल नहीं हो पायेंगे। कहते भर रहिए कि आज ऐसी स्थिति है, आज वैसी स्थिति है, लेकिन आप अपनी जिम्मेदारी को तो स्वीकार करते नहीं। इसलिए आप लोगों को पहला काम करना है बच्चों का मित्र बनना। अपनी संतान के साथ मित्रता करना, अभिभावक नहीं, पिता नहीं, माता नहीं, सिर्फ एक अच्छा मित्र। और जब आप मित्र बन जायेंगे, उनके सुख-दु:ख, उनकी आवश्यकता को अच्छी तरह से समझ पायेंगे, तब ही आप उनके जीवन में एक नये संस्कार का बीज डाल सकते हैं, उसके पहले नहीं। इसलिए योग कहता है कि सबसे पहले मित्रता कीजिए। और जब मित्र बन जाते हैं तो उनको संस्कारी बनाने के लिए फिर योग को अपनाइये।

आसन, प्राणायाम और मन्त्र

भारतीय परम्परा में उपनयन संस्कार के अन्तर्गत बच्चों को आसन, प्राणायाम और मन्त्र की शिक्षा दी जाती थी। आसन में सूर्य नमस्कार। प्रात:काल सूर्योदय

के समय उठकर, जब बाहर का वातावरण शान्त हो, मधुर हो, वायुमण्डल प्राण से भरा हुआ हो, तब सूर्य नमस्कार का अभ्यास करने से शरीर को सूर्य की किरणों से जो ऊर्जा प्राप्त होती है, वह मस्तिष्क को, बुद्धि को तीव्र बनाती है। मस्तिष्क को जाग्रत करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास सिखाया जाता था।

आज विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि आधुनिक जीवन में मनुष्य अपने मस्तिष्क की क्षमता का केवल दसवाँ हिस्सा उपयोग में लाता है, शेष नब्बे प्रतिशत हिस्सा तो सुषुप्त रहता है। अत: प्राणायाम के अभ्यास द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि मस्तिष्क के वे सुषुप्त क्षेत्र, जिनके द्वारा हम अपने जीवन को अधिक सुखद और सफल बना सकते हैं, जाग्रत हो जायें। प्रतिभा का विकास हो, एकाग्रता की वृद्धि हो तथा स्मरण शक्ति बढ़े।

भावनात्मक और वैचारिक चंचलता को शान्त करने के लिए बच्चों को गायत्री मन्त्र दिया जाता था। गायत्री मन्त्र से जो ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं, वे बच्चों की चेतना को प्रभावित करती हैं। ध्वनि-तरंग पर विज्ञान ने अनेक प्रकार के प्रयोग किये हैं। सन् 1978 में, अमेरिका में मन्त्र के उच्चारण पर एक प्रयोग किया गया था। कम्प्यूटर में उस मन्त्र की ध्वनि तरंग से जो चित्र उभरा, वह चित्र था श्रीयन्त्र का, और मन्त्र था 'ह्रीं'। यह तो एक प्रयोग के रूप में किया गया था यह जानने के लिए कि जब हम ह्रीं मन्त्र का उच्चारण करते हैं तो उसकी ध्वनि तरंग का प्रभाव हमारी चेतना पर किस प्रकार से पड़ता है। इस प्रयोग के पश्चात् वैज्ञानिकों ने यह माना कि हर प्रकार की ध्वनि-तरंग मस्तिष्क में, चेतना में एक रूप, एक चित्र बनाती है, और जो चित्र हमारे भीतर बनता है, वह है यन्त्र का।

यन्त्र शब्द चेतना से सम्बन्ध रखता है। यान का तात्पर्य होता है विमान या गाड़ी, जिसके द्वारा यात्रा की जाती है। और 'त्र' शब्द त्रायते अर्थात् मुक्ति से सम्बन्ध रखता है। तात्पर्य यह है कि हमारे भीतर की चेतना का जो यान है, जिसमें बैठकर मनुष्य विकास-पथ पर अग्रसर हो सकता है, उस यान को सांसारिक, मानसिक बन्धनों से मुक्त करना।

मन्त्र की परिभाषा भी इसी प्रकार की है – *मननात् त्रायते इति मन्त्र:,* अर्थात् मन को जो मुक्त करता है वह मन्त्र है। मन्त्र के माध्यम से जैसे-जैसे हम अपने मानसिक बन्धनों से मुक्ति पाते हैं, वैसे-वैसे मस्तिष्क के भीतर, चेतना के भीतर एक नया बिम्ब, एक नया चित्र उभरता है, और उस चित्र का भौतिक रूप होता है यन्त्र का। लेकिन उसका आध्यात्मिक विश्लेषण भी होता है, जिसमें कहा जाता है कि जो बिम्ब हमारे भीतर प्रकट होता है, वह हमारी मानसिकता, एकाग्रता एवं मन:शक्ति का प्रतीक है। उपनयन संस्कार के समय जिस गायत्री मन्त्र से बच्चों को अभिषिक्त किया जाता है, उस गायत्री मन्त्र के द्वारा बुद्धि तीव्र होती है, बच्चों के विचारों को एक सकारात्मक दिशा मिलती है और उनके भीतर के दुर्गुण धीरे-धीरे समाप्त होने लगते हैं।

यौगिक जीवनशैली

आप हमेशा इस बात को स्मरण रखिये कि योग की अपेक्षा यौगिक जीवन पद्धति का अधिक महत्त्व है। बच्चों को आसन, प्राणायाम और मन्त्र की जो शिक्षा दी जाती थी, वह केवल अभ्यास के रूप में नहीं, बल्कि जीवन पद्धति के रूप में, जिससे योग हमेशा के लिए उनके जीवन का एक अनिवार्य अंग बन जाए। जब इस प्रकार बचपन से ही हमारे शरीर की सुरक्षा की जाती है, शरीर में प्राण शक्ति संचरित की जाती है, मस्तिष्क को ऊर्जा से भरा जाता है, मन को अवगुणों से तथा वैचारिक प्रदूषण से सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाता है, तो निश्चित रूप से जिन्दगीभर हम सहज रूप से अपने जीवन की बाधाओं को पार करते हुए सफलता के पथ पर आगे बढ़ते रहते हैं।

योग दर्शन की यह मान्यता है कि चेतना एक हिमशिला की तरह है, जिसका केवल एक हिस्सा समुद्र की सतह पर दिखलायी देता है और शेष नब्बे प्रतिशत हिस्सा समुद्र के गर्भ में रहता है। इसी तरह चेतना का केवल एक हिस्सा संसार में व्यक्त होता है, पर इसके अतिरिक्त चेतना के सूक्ष्म हिस्से हैं, कारण हिस्से हैं, जिनकी अभिव्यक्ति हमारे जीवन में नहीं हो पाती। स्थूल चेतना के द्वारा हम इन्द्रियों का अनुभव ग्रहण करते हैं, वातावरण की जानकारी प्राप्त करते हैं, अपनी बुद्धि को बढ़ाते हैं, अपनी सजगता को बढ़ाते हैं, लेकिन सूक्ष्म चेतना तथा कारण चेतना का कभी प्रयोग नहीं होता। जिस चेतना को योग दर्शन में स्थूल, सूक्ष्म और कारण कहा गया है, उसी चेतना को विज्ञान की भाषा में चेतन, अवचेतन और अचेतन कहा गया है। उसी चेतना को दार्शनिक भाषा में जाग्रत, सवप्न और सुषुप्ति कहा गया है। जाग्रत समझ में आता है, लेकिन स्वप्न और सुषुप्ति तो समझ में नहीं आतीं।

निद्रा का अर्थ हम लोग सोने से लगाते हैं, लेकिन वह निद्रा नहीं है। निद्रा का तात्पर्य होता है, जहाँ पर मन पूर्ण रूप से स्थिर हो जाए, मन का अस्तित्व नहीं रहे तथा मन का सम्बन्ध बाह्य विषयों से नहीं रहे। उस अवस्था को कहते हैं निद्रा। स्वप्न का मतलब होता है, जब हम स्वयं का, सूक्ष्म अवस्था का अनुभव करने लगते हैं। जाग्रत का अर्थ हमलोग सामान्यतया बुद्धि से लगाते हैं, जगी हुई अवस्था से लगाते हैं, जिसमें हमारे शरीर द्वारा कर्म होता है। योग दर्शन कहता है कि जाग्रत अवस्था के परे स्वप्न के क्षेत्र में, निद्रा के क्षेत्र में तथा इनके परे भी जो अवस्था है तुरीयावस्था, उस अवस्था को प्राप्त करते ही मनुष्य जीवन में एक नयी शक्ति का संचार होता है और इस नयी शक्ति का स्वरूप केवल चेतन तत्त्व का नहीं रहता, प्राण का भी रहता है। प्राण के जाग्रत होने को योग की भाषा में कुण्डलिनी जागरण कहते हैं।

शक्ति का जागरण

योग दर्शन में बतलाया जाता है कि हमारे शरीर के भीतर अनेक प्रकार के शक्ति केन्द्र हैं, जिन्हें हम चक्र के नाम से जानते हैं। मानव शरीर में सात चक्र हैं। मानव शरीर के नीचे जो पशु शरीर है, उसमें सात चक्र हैं। मानव शरीर के ऊपर जो दिव्य शरीर है, उसमें भी सात चक्र हैं। पशु शरीर के चक्र पाताल कहलाते हैं, मानव शरीर के चक्र चक्र कहलाते हैं, दैविक शरीर के चक्र लोक कहलाते हैं और पशु शरीर के नीचे जो चक्र हैं, वे नरक कहलाते हैं। नरक, पाताल, चक्र और लोक – शक्ति और चेतना के ये केन्द्र एक अवस्था में एक अभिव्यक्ति के प्रतीक हैं। जब ये सभी चक्र एक रूप में जाग्रत होते हैं, तब उनकी शक्ति बन्धन से मुक्त होने लगती है तथा कुण्डलिनी का रूप धारण करती है। योग दर्शन में बतलाया जाता है कि मनुष्य शरीर में कुण्डलिनी शक्ति सबसे नीचे वाले चक्र, मूलाधार में सोई हुई है। मूलाधार चक्र भोग का प्रतीक है। भोग में लिप्त मनुष्य की चेतना और उसकी प्राणशक्ति सुषुप्त है, जाग्रत नहीं। लेकिन जैसे-जैसे साधना के द्वारा, आप अपने जीवन में परीवर्तन लाते हैं, प्राणशक्ति को जाग्रत करते हैं, अपनी चेतना को केन्द्रित करते हैं, ध्यान की अवस्था में सूक्ष्म चेतना के प्रति सजग होते हैं, वैसे-वैसे यह कुण्डलिनी शक्ति भी जाग्रत होती है।

योग दर्शन के अनुसार कुण्डलिनी के जाग्रत होने से अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। एक बार हमारे गुरुजी से एक प्रेस वार्ता में पूछा गया कि आपके शिष्य कहते हैं कि आपको अनेक प्रकार की सिद्धियाँ हैं, आप बतलाइये कि कौन-सी सिद्धियाँ हैं। तो स्वामीजी ने कहा कि मेरे पास कोई सिद्धि नहीं है। प्रेस वाले ने कहा कि अवश्य होगी, सब बाबा लोग अपनी सिद्धि को छुपाते हैं। स्वामीजी ने कहा कि ठीक है, तुम पूछते जाओ, मैं हाँ-ना बोलते जाऊँगा। प्रेस वाले ने पूछना शुरू किया –

क्या आप दूसरों के विचार पढ़ सकते हैं?
नहीं।
क्या आप हवा में उड़ सकते हैं?
नहीं।
क्या आप अग्नि को स्तम्भित कर सकते हैं?
नहीं।
क्या आप पानी के ऊपर चल सकते हैं?
नहीं।

क्या आप अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित कर सकते हैं? क्या आप अपने शरीर को भारी बना सकते हैं? क्या अपने शरीर को हल्का बना सकते हैं, बड़ा कर सकते हैं, छोटा कर सकते हैं? इस तरह सभी प्रकार की सिद्धियों के बारे में उसने पूछा। सबमें गुरुजी ने नकारात्मक जवाब ही दिया। अन्त में जब वह व्यक्ति परेशान हो गया तो कहता है कि अब आप ही बतलाइये कि आपके पास कौन-सी सिद्धि है। गुरुजी ने कहा कि मेरे पास एक ही सिद्धि है और वह यह कि मैं अपने दो पैरों पर खड़ा हो सकता हूँ। और यही सिद्धि कुण्डलिनी की सिद्धि है।

सिद्धि का मतलब यह नहीं होता कि आप शून्य से किसी वस्तु को प्रकट कर दें या अपने शरीर को दो भागों में बाँट दें या आप भूमि के नीचे महीनों रह जायें। सिद्धि का मतलब होता है जिसने अपने जीवन को साध लिया हो। अपने जीवन को किस प्रकार साधा जाता है? अपने जीवन को साधा जाता है साधना के द्वारा। जब आपके जीवन में साधना सिद्ध होती है, तब मन, बुद्धि, चित्त, प्राण आदि क्षमताओं की जागृति से जिस नयी चेतना का, नयी क्षमता का विस्तार होता है, विकास होता है, उसको योग में कहा जाता है सिद्धि। हमने प्रयत्न के द्वारा एक साधना को सिद्ध किया।

जो व्यक्ति अपने जीवन को साध लेता है, जो व्यक्ति साधना में स्थिर हो जाता है, वह व्यक्ति सिद्ध कहलाता है। इस अवस्था के सामने शेष सब गौण है। इस अवस्था की उत्पत्ति हमारे भीतर ही होती है, इसे बाहर से लाया नहीं जाता है, इसलिए मनीषियों ने शुरू से कहा है कि प्रकाश तो तुम्हारे भीतर है, केवल उस आवरण को हटाना है जिसके द्वारा प्रकाश ढका हुआ है। हनुमान जी जब सीता मैया की खोज कर रहे थे तो समुद्र के पास पहुँचे और चुपचाप बैठ गये। उनको तो आभास ही नहीं था कि मेरे भीतर शक्ति है कि मैं समुद्र को लांघ जाऊँ । लेकिन जामवंत ने उन्हें याद दिलाया कि हनुमान जी, आप तो अतुलित बलधाम हैं, आपके लिए समुद्र पार करना जरा भी मुश्किल नहीं है। आप तो चुटकी बजाते समुद्र पार कर सकते हैं और वापस आ सकते हैं। अगर आप चाहें तो लंका को उजाड़ सकते हैं। आपमें हर प्रकार की क्षमता है, सामर्थ्य है, पवनतनय बल पवन समाना।

गुरु की भूमिका

जिस प्रकार से हनुमान जी अपनी शक्ति को, अपनी क्षमता को भूले हुए थे उसी प्रकार से आज का मनुष्य भी अपनी शक्ति और क्षमता को भूले बैठा है। हम सब सोये हुए हनुमान हैं। अभी जगे नहीं हैं और कभी-कभी जब कोई हमें जगाने का प्रयास करता है, जिसको जगाने का अधिकार नहीं है, तो हममें उद्दण्डता, उच्छृंखलता भर जाती है, घमण्ड और अभिमान भर जाता है। यदि कोई आपको सबेरे-सबेरे हिला-डुला कर उठाएगा तो क्या आप शान्त मन से उठेंगे? नहीं, हड़बड़ाकर उठेंगे, क्या हो गया, हमको क्यों उठा रहे हैं? क्रोधित हो जायेंगे। और अगर कोई आपको स्नेह से सहलाकर गाना गाकर उठाता है, आप बड़ी प्रसन्न मुद्रा में उठेंगे। अब आप सोचिए कि जब ऐसा स्थूल में हो सकता है, तो क्या सूक्ष्म में नहीं होता होगा, कारण में नहीं होता होगा? सूक्ष्म में और कारण में भी जगने की आवश्यकता होती है, लेकिन जगाया जाता है एक अधिकारी व्यक्ति द्वारा ही। हर कोई नहीं जगा सकता। जाग मछन्दर गोरख आया – मत्सयेन्द्रनाथ तो स्वयं सिद्ध थे, लेकिन उनको जगाने के लिए उनका चेला ही जाता है राजदरबार में। कहने का तात्पर्य यह कि हर अवस्था में एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है, जो हमारी आवश्यकता को जाने, समझे और उस आवश्यकता, उस अभाव को दूर करने के लिए हमें सही निर्देश दे। ये निर्देश गुरु ही देते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक गुरु होना आवश्यक है। लेकिन गुरु के प्रति एक भाव रहना भी जरूरी है। गुरु किसी व्यक्ति का कूड़ादान नहीं होता। गुरु की एक मर्यादा होती है। आप उनके पास जाइये आध्यात्मिक प्रेरणा के लिए। पीर, बावर्ची, भिश्ती, खर – गुरु ये चार नहीं हो सकते हैं कि गुरु आपका बोझ भी ढोए, गुरु आपके लिए खाना भी बनाए, गुरु आपके लिए पानी भी लाये, गुरु आपके लिए सब कुछ करे। गुरु की मर्यादा होती है। गुरु से प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए और उस प्रेरणा के आधार पर, शिक्षा के आधार पर चलने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। तभी मनुष्य अपने जीवन को सार्थक बना सकता है। नहीं तो गधे को खिलाया, न पाप न पुण्य। कितनी बार कहेंगे कि दु:ख आते हैं, उनको झेलना सीखो। ईश्वर पर आस्था रखो। अपनी शक्ति को जाग्रत करो। अपने भीतर शक्ति और आनन्द का अनुभव करो, सुख का अनुभव करो। ये सभी बातें कहने नहीं, अनुभव करने की हैं। इनका अनुभव तभी हो सकता है जब आप खुद को संस्कारी बनाने के लिए प्रयत्नशील रहें।

इसलिए हमने चर्चा बच्चों से शुरू की, क्योंकि बच्चों को अगर संस्कारी बनाना हो तो आपको खुद संस्कारी बनना पड़ेगा। आपके लिए मित्रता का संस्कार आवश्यक है। जब मित्रता का संस्कार रहेगा तब आप बच्चों को स्नेह दे पायेंगे, प्रेम दे पायेंगे, उनको समझ पायेंगे, उनको सही दिशा में ला पायेंगे, उनका सहारा बन पायेंगे। इस प्रकार जब आपके आचरण एक बालक को प्रभावित करेंगे, तब उसका जीवन योगमय हो जाएगा, सुसंस्कारों से भरा होगा। मित्रता के साथ अगर उसको योग की ओर आकृष्ट कीजिएगा तो निश्चित रूप से वह आपसे दस कदम आगे निकलेगा, क्योंकि उसे आत्मानुशासन की शिक्षा मिलेगी। और जब बालक को आत्मानुशासन की शिक्षा मिलेगी तो भविष्य में उसका कार्य परमार्थ का होगा, उसका रहन-सहन सन्तुलित होगा, उसका आचरण सुन्दर होगा, उसकी चेतना का विस्तार होगा, विकास होगा और वह आध्यात्मिक बनेगा। इस बात को पुन: स्मरण में रखिये कि योग की अपेक्षा यौगिक जीवन पद्धति का अधिक महत्त्व है।

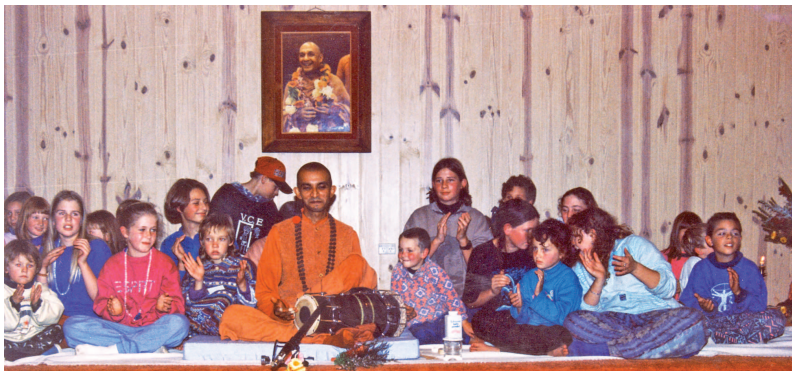

योग चिकित्सा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

विगत कुछ वर्षों से बहुत से डॉक्टर एवं वैज्ञानिक शरीर पर योग के प्रभाव की जाँच कर रहे हैं। वास्तव में पहले लोग योगासनों को व्यायाम के रूप में लेते थे जिनसे शरीर एवं मांसपेशियों को सशक्त बनाया जाता था। अतएव योग के पूर्व प्रचलित अभ्यास ज्यादा शक्तिशाली और सक्रिय थे। उनमें गतिशीलता एवं लयबद्धता थी। इसी बीच मेरे गुरु, स्वामी शिवानन्द जी ने चालीस के दशक में योगासन एवं प्राणायाम पर पुस्तकें लिखीं। उनके सभी शिष्य संसार में आज योग का प्रचार तेजी से कर रहे हैं।

सबसे पहली पुस्तक का नाम था प्राणायाम और दीर्घ जीवन, फिर योगासन और सुन्दर स्वास्थ्य। भारत के बहुत-से प्रकाशन संस्थानों में ये पुस्तकें छापी गयीं तथा पूरे विश्व में भेजी गयीं। इन पुस्तकों में स्वामी शिवानन्द जी ने बतलाया कि योगासन मात्र व्यायाम नहीं है, बल्कि यह मानव शरीर की आन्तरिक प्रणालियों पर प्रभाव डालने वाली क्रिया है।

आरम्भ में वैज्ञानिकों को इसे स्वीकारने में बड़ी कठिनाई हुई। उनको आश्चर्य होता था कि आसन, प्राणायाम, षट्कर्म या हठयोग की क्रियाएँ किस प्रकार असाध्य रोगों, जैसे दमा, मधुमेह, रक्तचाप, चर्मरोग, एक्जीमा, पेप्टिक अल्सर, छोटी आँत का अल्सर, गैस्ट्रिक अल्सर, गठिया और वात रोगों में लाभदायी होंगी। प्रारम्भ में इस पर विश्वास जमना बहुत कठिन था। व्यायाम शरीर को स्वस्थ बनाता है ऐसी मान्यता थी, परन्तु आसनों के द्वारा शरीर के पूर्ण स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है, ऐसा विश्वास प्रदान करने हेतु वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत नहीं थे।

अन्तःस्रावी प्रणाली में असंतुलन

जब स्वामी शिवानन्द जी ने अपनी पुस्तक लिखी तो उन्होंने कुछ तथ्य प्रस्तुत किये। पहला तथ्य यह था कि आसनों के अभ्यास से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के असंतुलन दूर होते हैं। मानव शरीर में तो बहुत प्रकार की ग्रन्थियाँ हैं, जिनमें से एक प्रकार का नाम अन्तःस्रावी ग्रन्थि है। इसका सीधा सम्बन्ध रक्त वाहिनी प्रणाली से है, जिसमें हॉर्मोन का संचार किया जाता है। ये अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ विशेष महत्त्व की हैं, क्योंकि इनके द्वारा किसी व्यक्ति का स्वभाव, आचार-विचार और अन्य कई बातें भी पूर्णरूपेण परिवर्तित हो सकती हैं।

उदाहरणस्वरूप, आप थायरायड ग्रन्थि को ही लें, जो गले में नीचे की तरफ स्थित है और जिसके हॉर्मोन का सीधा संचार रक्तवाहिनी में किया जाता है। इस हॉर्मोन का कार्य शरीर के तापक्रम को नियन्त्रण में रखना है। सामान्यतः बारह वर्ष

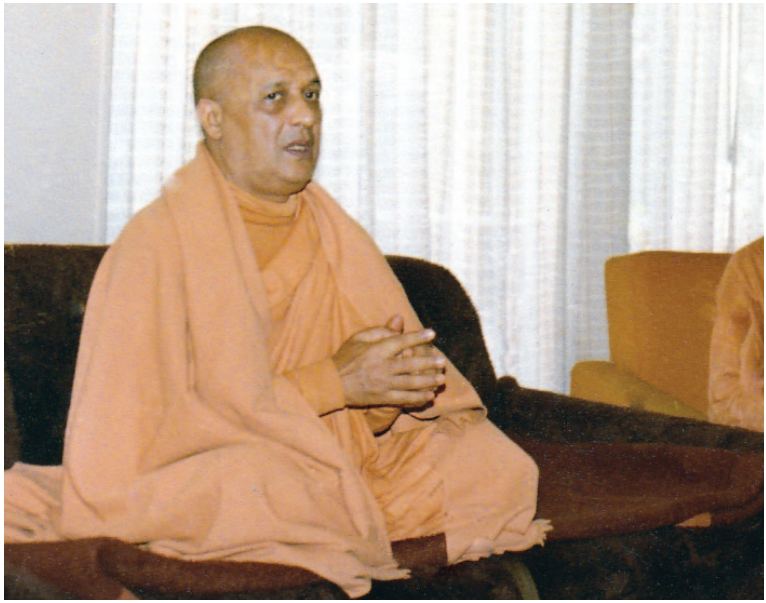

की उम्र से इसकी क्रियाशीलता आरम्भ होती है और सत्तर या अस्सी वर्ष की आयु तक बंद हो जाती है। हाँ, यह इससे पूर्व भी, पचपन-साठ वर्ष की उम्र पहुँचते तक भी बंद हो सकती है। इतने वर्षों में यह ग्रन्थि मात्र एक चौथाई चम्मच ही रस उत्पादित करती है, जिसका अंशमात्र रक्त में बराबर संयुक्त होता रहता है। उस अल्प मात्रा के रस से ही हमारे शारीरिक तापक्रम में तथा भावनात्मक विचारों में संतुलन आता है।

इसी प्रकार शरीर में अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ भी हैं, जैसे, पैन्क्रियाज़, जो इन्सुलीन का उत्पादन करती है, एड्रीनल जो एड्रीनलीन रस बनाती है, तथा प्रजनन ग्रन्थियाँ जो प्रजनन हेतु शुक्र एवं रजाणु बनाती हैं। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के असंतुलन से शरीर के रोगी होने की अधिक सम्भावना रहती है। इसी तथ्य की पुष्टि स्वामी शिवानन्द जी ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक में की। बाद में इस तथ्य की संपुष्टि हुई कि उन्होंने शत-प्रतिशत सही लिखा है।

तंत्रिका-तंत्र

तंत्रिका-तंत्र का असंतुलन एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है जो बीमारी पैदा करने हेतु जिम्मेवार है। स्वचालित तंत्रिका-तंत्र के अनुकम्पी तथा परानुकम्पी तंत्रिका समूह हमारी अनेक शारीरिक गतिविधियों का नियमन करते हैं। इन दोनों प्रकार की कार्यवाही में किसी तरह का असंतुलन उत्पन्न होने से दैनिक जीवन में समस्या खड़ी हो जाती है। ये ही संस्थान अन्तःस्रावी प्रणाली को भी नियंत्रित करते हैं।

हम पैन्क्रियाज़ ग्रन्थि के बारे में चर्चा करें। इस बड़ी ग्रन्थि से बहुत-से रस स्रावित होते हैं, जिसमें इन्सुलीन प्रमुख है। यह चीनी सम्बन्धी पाचन के लिए उत्तरदायी है। अगर इन्सुलीन के रसस्राव में किसी भी तरह की गड़बड़ी उत्पन्न होती है तो चीनी का चयापचय सही ढंग से नहीं हो पाता है, इसका अधिकांश भाग शरीर के बाहर निष्कासित हो जाता है। इसी को मधुमेह की बीमारी कहते हैं।

परानुकम्पी तंत्रिका-तंत्र में असंतुलन ही पैन्क्रियाज़ में अवरोध उत्पन्न करने के लिए दोषी है। जब कोई मनुष्य अधिक मात्रा में भोजन लेता और शारीरिक श्रम नहीं करता है तो यह इस बीमारी का प्रथम कारण बनता है। दूसरा कारण, जब कोई व्यक्ति लगातार तनाव एवं चिन्ता से पीड़ित होता है तब परानुकम्पी नाड़ियाँ जरूरत से कम क्रियाशील हो जाती हैं और इनका कार्य सुचारु ढंग से नहीं होता। इसके फलस्वरूप इच्छित मात्रा में इन्सुलीन रस की आपूर्त्ति नहीं होती, क्योंकि पैन्क्रियाज़ ग्रन्थि को संवेदना नहीं मिल पाती है।

प्राण और मन

योग द्वारा हम इस स्थिति को किस प्रकार सुधार सकते हैं? हम लोग इस पर क्रमानुसार विचार करेंगे। योग का अर्थ होता है मिलन या संयोजन। हठयोग एक ऐसा विज्ञान है जिसमें शरीर की दो प्रणालियों का सम्मिलन होता है। इन दो पक्षों का नाम क्रमशः सूर्य एवं चन्द्र, प्राण एवं मन, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति है। ये दो शक्ति के केन्द्र ही हमारे शारीरिक अस्तित्व हेतु जिम्मेवार हैं। ये दोनों हमारे अंग-प्रत्यंग में क्रियाशील होती हैं। प्राण शक्ति सक्रिय है और चेतन शक्ति स्थिर है। इन दोनों शक्तियों में जब भी असंतुलन उपस्थित होता है, रोग उत्पन्न होते हैं।

प्राण का अर्थ है जीवनी शक्ति। यह शक्ति शरीर की सभी प्रकार की क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है जैसे अंगों का संचालन, शरीर का तापक्रम, पाचन, निष्कासन, संचालन, श्वसन इत्यादि। शरीर के जितने कार्य होते हैं उनके लिए प्राण की आवश्यकता होती है। प्राणशक्ति के बिना कोई चयापचय नहीं होता, शरीर निष्क्रिय हो जाता है। जब शरीर में प्राण बिल्कुल नहीं हो तो उस स्थिति में उसे मृत कहते हैं।

शरीर में दूसरी शक्ति मनःशक्ति या चैतन्य शक्ति है जिसके द्वारा हम सोचते हैं, अनुभव करते हैं। इस शक्ति के माध्यम से हम किसी वस्तु का ज्ञान पाते हैं, चेतनता प्राप्त होती है। इसके अभाव में हम जीवित तो रह सकते हैं, परन्तु जानने-समझने की शक्ति हममें नहीं होगी। इसके न होने से हमारे सामने कोई सुन्दर सुगंधित पुष्प हो या कोई सड़ी-गली बदबूदार वस्तु, हमें पता नहीं लगेगा, कोई असर नहीं पड़ेगा। आदमी जीवित लोथड़ा सा रहता है, उसमें न कोई चेतना होती है न कोई अनुभूति।

हठयोग विज्ञान के अनुसार जब मानसिक शक्ति में असंतुलन होता है तब मस्तिष्क में बीमारी होती है जिसे मानसिक रोग कहते हैं, और जब प्राण शक्ति में

असंतुलन आता है तो शरीर सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। मन के रोगों को मानस रोग और शरीर के रोगों को कायिक रोग कहते हैं। रोग मन से आरंभ होकर शरीर में भी प्रवेश करता है अथवा शरीर से उत्पन्न होकर मन में प्रविष्ट हो जाता है। जो रोग शरीर में उत्पन्न होकर मन को प्रभावित करते हैं उन्हें कायिक-मानसिक कहते हैं तथा जो मन में उत्पन्न होकर शरीर को प्रभावित करते हैं उन्हें मनोदैहिक या मनोकायिक रोग कहते हैं। देखा जाए तो कोई रोग पूर्ण मानसिक या पूर्ण दैहिक नहीं होता। अतएव, हठयोग द्वारा हमलोग दोनों शक्तियों के बीच संतुलन लाने की कोशिश करते हैं और ऐसा करने के बाद शरीर में स्वास्थ्य परिलक्षित होने लगता है।

गलत धारणाएँ

कुछ वर्ष पूर्व योग प्रशिक्षक यह कहा करते थे कि जब आसनों का अभ्यास करते हैं तो शरीर की मालिश होती है। उदाहरणस्वरूप, धनुरासन में पेट की मालिश होती है जिसके फलस्वरूप पाचन तंत्र सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। मैं इस सिद्धान्त से पूरी तरह सहमत नहीं हूँ, क्योंकि यह पूर्णतया सही नहीं है। योग चिकित्सा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से योगासन के अभ्यास द्वारा तंत्रिका-तंत्र में संतुलन लाने से ही लाभ होता है। तंत्रिका-तंत्र में संतुलन लाने से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव का सही उत्पादन होने लगता है। यह एक बड़ा सरल सिद्धान्त है।

एक दूसरा तथ्य प्राणायाम से सम्बन्धित है। बहुत पुस्तकों में यह कथन है कि शक्ति सम्पन्न होने के लिए पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन का संग्रह करना पड़ता है। परन्तु यह विज्ञान के दृष्टिकोण से सत्य नहीं है। कोई व्यक्ति कार्बन का संग्रह कर सकता है, पर ऑक्सीजन का नहीं, क्योंकि ऑक्सीजन एक शीघ्र आग पकड़ने वाली गैस है और शरीर के सभी तन्तु जल जायेंगे।

बहुत वर्ष पूर्व जब मैं इन अभ्यासों को सीख रहा था तो मुझे बतलाया गया कि प्राणायाम अधिक करके अन्दर में ऑक्सीजन का संग्रह किया जाना चाहिये। परन्तु बाद में जब मैंने इसके विज्ञान का अध्ययन किया तो ज्ञात हुआ कि ऑक्सीजन का संग्रह नहीं किया जा सकता। प्राणायाम द्वारा प्राणशक्ति को बढ़ाया जा सकता है, परन्तु ऑक्सीजन का संग्रह नहीं हो सकता। पर कार्बन का संग्रह हो सकता है, और कार्बन का यह संग्रह फेफड़ों में नहीं, मस्तिष्क की जाल-रचना में होता है। संतुलन को कायम रखने हेतु कार्बन का संग्रह आवश्यक है। इसीलिए प्राणायाम में श्वास रोकने या कुंभक करने को कहा जाता है, यही कार्बन के संग्रह का तरीका है।

आसन पर शोध

अब हम एक अन्य पक्ष पर प्रकाश डालेंगे। पोलैण्ड, जापान, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और भारत में भी योग पर बहुत शोधकार्य हो रहे हैं। इनका रोगों में व्यवहार हो

रहा है, जैसे तनाव से उत्पन्न रोग, जिनमें कैंसर, ल्युकीमिया और अल्सर सम्मिलित हैं।

सन् 1964 में सर्वप्रथम हुए शोधों में एक शोध प्रो. जुलियन के नेतृत्व में कई डॉक्टरों और वैज्ञानिकों के साथ पोलैण्ड में कार्यान्वित हुआ। उसमें डॉ. ट्रेडियस पैसिक मेरे प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहे थे, वे इस शोध-कार्य में समन्वयकर्त्ता थे। विषय था शीर्षासन का शरीर पर प्रभाव। सर्वप्रथम उन्हें पता लगा कि शीर्षासन में मस्तिष्क में वायु-संचार तिगुना-चौगुना बढ़ जाता है। दूसरा यह कि ऑक्सीजन की खपत अत्यल्प हो जाती है। अतएव जब कोई शीर्षासन का अभ्यास करता है तो ऑक्सीजन की खपत कम हो जाती है। ध्यान की अवस्था में भी बहुत कम मात्रा में ऑक्सीजन का व्यय होता है। जब मस्तिष्क की गति धीमी हो जाती है और बाह्य चेतना समाप्त होती जाती है, शरीर शान्त होता जाता है और विचार शक्ति भी स्थिर हो जाती है तब उस समय ऑक्सीजन की खपत बहुत अल्प मात्रा में होती है। इसी से योग में कहा गया है कि साधक की उम्र बढ़ जाती है।

दूसरी मुख्य बात जो इस शोध द्वारा ज्ञात हुई, वह यह थी कि शीर्षासन करने से शरीर के निचले भाग के सभी अंग तनावमुक्त बनते हैं और रक्त का जमाव गतिशील बनता है। ऊपरी अंगों का भार वहन करने से वे सदैव तनाव में रहते हैं। बच्चादानी जो नीचे की तरफ स्थित थी अब विपरीत दिशा की ओर भार डालती है। यही हालत सभी उदर स्थित अंगों की होती है। परन्तु अगर आप इसी स्थिति में 24 घण्टे बने रहें तो कोई विशेष फायदा नहीं होता है। अगर इसे पाँच-सात मिनट तक ही किया जाय तब यह अंगों को शिथिलता प्रदान कर सकता है।

हॉर्मोनों का पुनर्सन्तुलन

मैं जाँच के तौर पर बहुत लोगों को शीर्षासन सिखला रहा हूँ। एक महिला जिसे फाइब्रोसिस (तन्तुशोथ) था, उसकी मैंने शीर्षासन कराकर जाँच की। तन्तुशोथ में मासिक स्राव दस दिनों तक अत्यधिक मात्रा में होता रहता है। शीर्षासन के अभ्यास

द्वारा पिट्यूटरी ग्रन्थि में संतुलन स्थापित होता है जिसके फलस्वरूप मासिक स्राव में फर्क आता है। यह ग्रन्थि सभी ग्रन्थियों में प्रमुख है, जिसमें बारह प्रकार के हॉर्मोन बनते हैं। ये सब हॉर्मोन अगर संतुलित नहीं हों तो शरीर में किसी भी प्रकार का दोष उत्पन्न हो सकता है। इस ग्रन्थि विशेष के स्वास्थ्य के लिए शीर्षासन का अभ्यास लाभदायक है, क्योंकि शीर्षासन में रक्त संचार मस्तिष्क की ओर तेजी से होता है। जब पिट्यूटरी ग्रन्थि में रक्त संचार पूर्ण रूप से होता रहता है तो यह स्वस्थ बनी रहती है।

मैं जब उस महिला को शीर्षासन सिखा रहा था तो मुझे अच्छी तरह मालूम था कि मैं उसकी समस्या का निदान किसी चमत्कार द्वारा नहीं कर रहा हूँ। अगर किसी हॉर्मोन के असंतुलन के फलस्वरूप उसके बच्चेदानी में उपर्युक्त बीमारी हो गयी है तो उसके संतुलन से उसे दूर किया जा सकता है, यह मैं समझता था। योग द्वारा इसी प्रकार सुधार होता है।

हृदय पर शोध

मैं आपको एक दूसरा उदाहरण देता हूँ। 1966 में भारतीय केन्द्रीय सरकार द्वारा मुझे एक शोधकार्य करने को आमंत्रित किया गया। मैंने उसे स्वीकारा और पटना मेडिल कॉलेज अस्पताल में इक्कीस डॉक्टरों की एक समिति गठित हुई, जिसमें मुझे समन्वयकर्ता बनाया गया। मैंने जिस विषय का चुनाव किया वह था, 'योग अभ्यासों का हृदय रोगों पर प्रभाव'। इस शोध का एक हजार रोगियों पर प्रयोग किया गया, जो पाँच वर्ष की अवधि तक इस हेतु वहाँ आये। इसका संचालन हृदय रोग विभाग के वरिष्ठ डॉक्टर द्वारा किया गया।

इस शोध का संक्षिप्त सारांश यह था कि रोगियों को साधारणतया दी जाने वाली दवाओं का तेरहवाँ भाग ही उस समय तक दिया जाता रहा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अगर रोगी योगारम्भ के पूर्व प्रतिदिन तेरह गोलियाँ लेता था तो बाद में उसे एक गोली ही लेनी पड़ी। इस शोध के दौरान सिखाये जाने वाले योगाभ्यास जटिल नहीं थे। केवल पद्मासन और सिद्धासन का अभ्यास, प्राणायाम में छोटे स्तर के प्राणायाम जैसे श्वास लेना और छोड़ना (कुंभक नहीं), पीछे झुकने वाले सरल आसन जैसे सर्पासन और शलभासन, सामने झुकने वाले आसन, जैसे पश्चिमोत्तानासन और हलासन इत्यादि कराये गये। बहुत से रोगियों ने अच्छी प्रगति की। वे सब योगाभ्यास करते थे और उनके मस्तिष्क की तरंगें भी आशावादी पायी गयीं।

वास्तव में, जो रोगी प्रतिदिन सुबह एवं शाम के सत्र में पचीस मिनट की कक्षा करते रहे उन्हें जो व्यक्तिगत अनुभव सर्वप्रथम हुआ वह यह था कि वे अब स्वस्थ हो जायेंगे। सिर्फ यह एक विचार जिसका स्फुरण उनके भीतर हुआ, सैकड़ों दवाओं से भी अधिक शक्तिशाली था। एक बार अगर यह धारणा आप में बनती है तो आप अवश्यमेव स्वस्थ हो जायेंगे।

क्या हृदय की गति को रोका जा सकता है?

यह विषय बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। बहुत बार हम लोग समाचार पत्रों में पढ़ते हैं कि अमुक योगी ने भू-समाधि में प्रवेश किया है, जो बाहर से बिल्कुल बंद है और उसमें वह पाँच, दस या पन्द्रह दिनों तक लगातार रहता है। प्रायः इसे लोग शुरू में धोखा या प्रपंच ही समझते हैं, क्योंकि उनके पास इसे जाँचने की कोई विधि नहीं होती। किसी को भी यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होता कि वह योगी अन्दर में किसी प्रकार श्वास ले रहे हैं अथवा नहीं। परन्तु इन दिनों तो वैज्ञानिकों के पास हृदय की गति, नाड़ी की गति, श्वास की अवस्था, सभी की नाप-जोख करने के उपकरण हैं।

कैसे कोई हृदय की गति रोक सकता है और पुनः संचालित कर सकता है? क्या यह संभव है? अगर संभव है तो चिकित्सा शास्त्र में कई नये अध्याय जोड़ने पड़ेंगे जिनसे यह बताया जा सके कि हृदय का दौरा रोका या सुधारा जा सकता है, और जिस हृदय को एक बार दौरा पड़ा हो उसे पुनः स्वाभाविक बनाया जा सकता है।

जब कोई व्यक्ति चिकित्सालय के उपकरणों द्वारा दस दिनों तक मृत साबित किया गया हो तो उसे जीवित करार देने के लिए वास्तव में क्या घटित होता है? यह पुनर्जीवन कैसे प्राप्त होता है? योग में कहा जाता है कि जब मस्तिष्क शान्त हो जाता है तो श्वास भी बंद हो जाती है। यह 'केवल कुम्भक' की स्थिति है। इसका अर्थ है श्वास की गति का पूर्णतः निरुद्ध होना या कुम्भक लगना। जैसे ही मस्तिष्क स्पन्दनशील होता है, श्वास चालू हो जाती है, क्योंकि मन एवं श्वास दोनों परस्पर सहयोगी हैं। वे एक साथ रहते हैं, एक साथ गति करते हैं, एक साथ निकलते हैं और एक साथ ही मरते हैं। अगर प्राण जीवित होता है तो मन भी जीवित होता है, जब मन पुनर्जीवित होता है तब प्राण भी होता है।

कुछ योगी प्राणों की गति को रोकते हैं, उन्हें हठयोगी कहा जाता है। दूसरे मन से आरंभ करते हैं, अर्थात् मन की गति को रोकते हैं, वे राजयोगी कहलाते हैं। दोनों

में एकमात्र यही फर्क है कि मन के द्वारा प्राणों को प्रभावित करना राजयोगी का काम है और प्राणों के द्वारा मन को प्रभावित करना हठयोग की क्रिया है।

आज्ञा चक्र का कार्य

योग शास्त्र में एक छोटी ग्रन्थि का वर्णन मिलता है जो दोनों भौंहों के मध्य में अन्दर की तरफ सुषुम्ना शीर्ष पर स्थित है। यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थि है। तंत्र शास्त्र में इसकी आज्ञा चक्र के नाम से चर्चा की गयी है। आज्ञा चक्र से ही सभी कार्यों की आज्ञा अन्य ग्रन्थियों को दी जाती है। अगर कोई इस चक्र पर मन को एकाग्र करे तो धीरे-धीरे उसकी एकाग्रता केन्द्रित होती जायेगी और बढ़ती जायेगी तथा एक छोटा प्रकाश दिखने लगेगा। यह प्रभामण्डल की तरह दृष्टिगोचर होगा जैसे किसी संत-महात्मा के सिर के चारों ओर वृत्ताकार घेरा रहता है। जब यह प्रकाश का वृत्ताकार क्षेत्र वहाँ दिखाई दे तो आप समझ सकते हैं कि आज्ञा चक्र से सम्बन्ध हो गया है। अगर यह प्रभामंडल वहाँ दृष्टिगोचर नहीं है तो आप समझें कि आज्ञा चक्र से सम्बन्ध नहीं जुड़ा है। आप वहाँ पर एक तरह का दबाव अनुभव करेंगे, परन्तु प्रकाश का दर्शन नहीं होगा। जब प्रकाश लगातार दिखता है, कभी गोलाकार तो कभी अण्डाकार, तो आप समझें कि आप का आज्ञा चक्र प्रभावित हो गया है। यह पहली बात हुई।

दूसरी बात यह कि प्रकाश की तीव्रता यह प्रदर्शित करती है कि श्वास की गति उतनी ही धीमी होगी और एक ऐसी स्थिति भी आयेगी जहाँ श्वास गति अवरुद्ध हो जायेगी। जब श्वास स्तंभित हो जाती है तो उसके कुछ क्षण बाद हृदय भी कार्य करना स्थगित कर देता है, परन्तु चेतना बनी रहती है। यही उस भू-समाधि का रहस्य है। शरीर के माध्यम से वहाँ कोई क्रिया नहीं होती, परन्तु चेतना जाग्रत रहती है।

अब उस चेतना को समझें। वहाँ सिर्फ प्रकाश भर रहता है, जिसका न कोई नाम है न रूप है, न समय-स्थान है, मात्र प्रकाश की चेतना भर होती है। जब तक वह प्रकाश दृष्टिगोचर होता रहेगा चेतना भी रहेगी और प्राण शक्ति वहाँ एक बीज की तरह अवस्थित होगी। अगर किसी भी समय वह प्रकाश लुप्त हो गया तो वह योगी मृत हो जायेगा। प्रकाश के अभाव में हृदय

का पुनः संचालन नहीं हो सकता। अतएव जब प्रकाश लुप्त होने लगता है तो योगी का मन अन्दर से बाहर निकल आता है। वह अपनी चेतना का संयोग समय एवं स्थान से करता है और घण्टी बजाता है ताकि गड्ढे का दरवाजा खोल दिया जाए।

अब हमें यह जानना चाहिये कि वह प्रकाश दो चीजों का पर्याय है। पहला कि प्राण शरीर में अव्यक्त रूप से अवस्थित है तथा दूसरा कि योगी प्रकाश की चेतना से अभिभूत है। यह आज्ञाचक्र की सक्रियता के फलस्वरूप होता है।

आज्ञा चक्र की विशेषता

योगाभ्यास में इस ग्रन्थि की सजगता पर विशेष बल दिया गया है। भ्रूमध्य पर एकाग्रता की क्रिया को शाम्भवी मुद्रा कहते हैं। इसका विकास त्राटक के माध्यम से भी किया जा सकता है। इसके लिए कई अन्य क्रियायें भी हैं। अगर कोई आज्ञा चक्र को भलीभाँति जगाना जान जाय तो वह शरीर की किसी भी प्रणाली को नियंत्रित करने में सक्षम हो जायेगा। अन्तःस्रावी तंत्र, तंत्रिका-तंत्र, श्वसन तंत्र, रक्त संचालन प्रणाली, पाचन तंत्र और विसर्जन तंत्र भी नियंत्रित हो सकता है और यही योग की विधिवत् प्रक्रिया है। हाँ, हम लोग आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध, ध्यान, एकाग्रता, शिथिलीकरण सभी कुछ अवश्य सीखते और करते हैं, पर सबसे प्रमुख एवं आवश्यक क्रिया है इस ग्रन्थि को, जो सबसे महत्त्वपूर्ण है, जिसका नाम पीनियल है और जो इस आज्ञा चक्र का निवास स्थान है, उसे जागृत करना।

मैं इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए एक सरल दृष्टान्त दे रहा हूँ। पिट्यूटरी ग्रन्थि एक शिष्य की तरह है और पीनियल ग्रन्थि गुरु समान है। यहाँ यही रिश्ता होना चाहिये। जब तक यह सम्बन्ध पालित होता है तब तक सब कुछ ठीक-ठाक, सुचारु रूप से चलता है, परन्तु अगर कहीं पीनियल ग्रन्थि पिट्यूटरी की सहायक बन गयी या अधीनस्थ बन गयी तो हर प्रकार की समस्या उठ खड़ी होगी – भावनात्मक, मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक भी। थायरायड अगर अतिस्रावी हो जाय या अल्पस्रावी हो जाय, एड्रीनल अतिस्रावी हो जाय या अल्पस्रावी, तो चयापचय या शरीर में उसकी खपत असंतुलित ढंग से होगी और व्यक्ति को इस बात का पता नहीं लगेगा कि वास्तव में स्थिति क्या है? व्यक्ति दवा पर दवा लेता जायेगा। चिकित्सकों को पता नहीं चल पाता कि क्या गड़बड़ी है, क्योंकि वे सिर्फ शरीर का इलाज करना सीखते हैं, जिसमें हड्डी, मांस-मज्जा, रक्त और चमड़े का ज्ञान होता है। वे सूक्ष्म स्तर पर होने वाली बीमारियों के बारे में अज्ञानी होते हैं।

योग में हम इस शरीर को मन और प्राण रूपी दो मूल शक्तियों का विकसित आधार ही समझते हैं। इन दोनों शक्तियों में समन्वय स्थापित करने के लिए पीनियल ग्रन्थि का स्वस्थ होना अति आवश्यक है, जिसे आज्ञा चक्र पर एकाग्रता लाते-लाते प्राप्त किया जाता है।

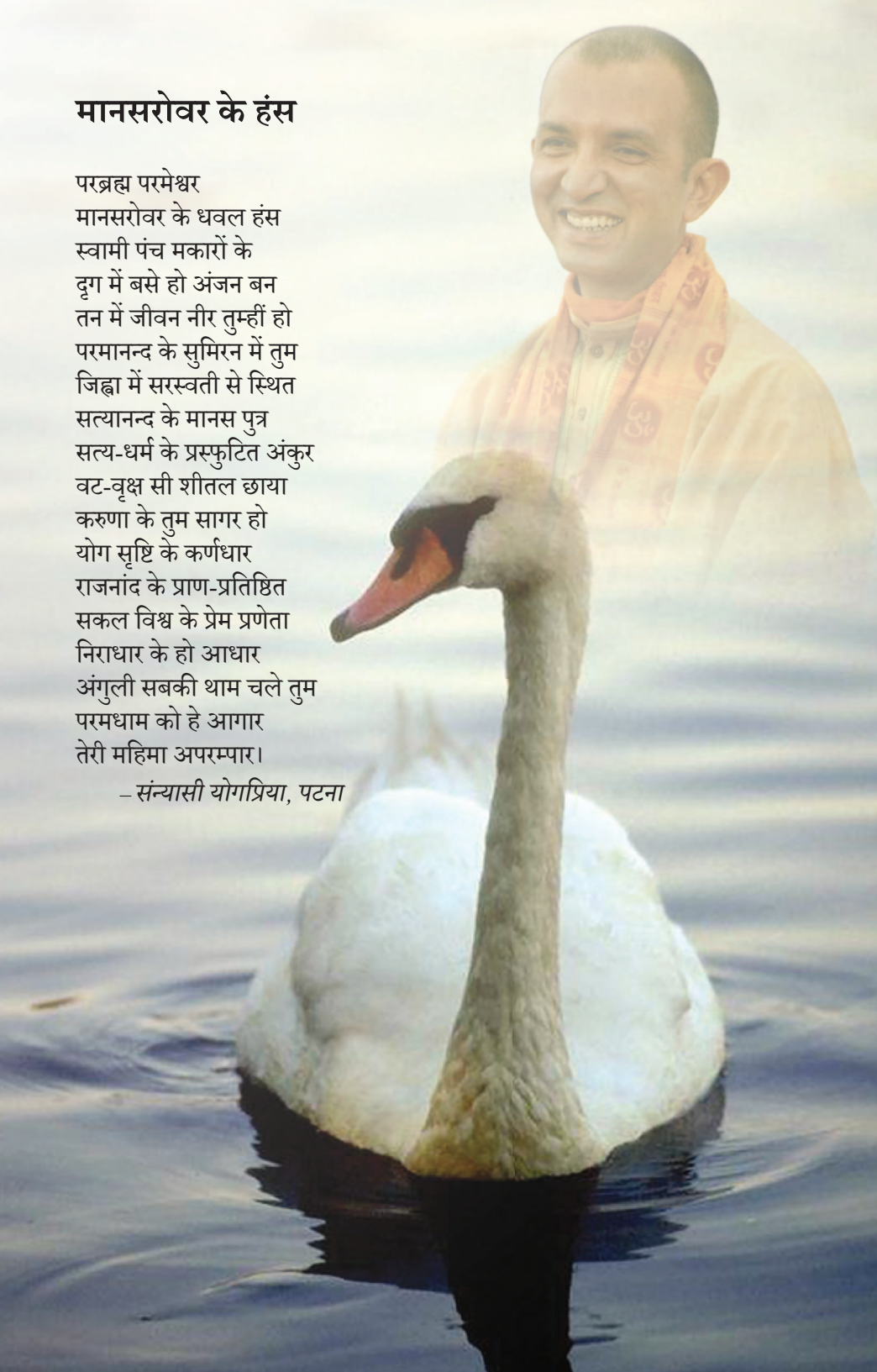

मानसरोवर के हंस

परब्रह्म परमेश्वर
मानसरोवर के धवल हंस
स्वामी पंच मकारों के
दृग में बसे हो अंजन बन
तन में जीवन नीर तुम्हीं हो
परमानन्द के सुमिरन में तुम
जिह्वा में सरस्वती से स्थित
सत्यानन्द के मानस पुत्र
सत्य-धर्म के प्रस्फुटित अंकुर
वट-वृक्ष सी शीतल छाया
करुणा के तुम सागर हो
योग सृष्टि के कर्णधार
राजनांद के प्राण-प्रतिष्ठित
सकल विश्व के प्रेम प्रणेता
निराधार के हो आधार
अंगुली सबकी थाम चले तुम
परमधाम को हे आगार
तेरी महिमा अपरम्पार।

– संन्यासी योगप्रिया, पटना

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

प्रेममय कोष

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

श्री कृष्ण आराधना 2020 के दौरान दिए सत्संगों में स्वामीजी ने बताया कि योग दर्शन में वर्णित पंच कोषों की तरह प्रेम को भी एक कोष के रूप में देखा और विकसित किया जा सकता है। इस प्रेम रूपी शरीर के संचालन के लिये छ: अंग आवश्यक हैं – मान-सम्मान और प्रगाढ़ता रूपी दो पैर, कर्त्तव्य-परायणता और निष्ठा रूपी दो हाथ, तथा विवेक और वैराग्य रूपी दो आँखें। अगर हम इन्हें सुधारते हैं तो एक समय आएगा जब हम अपने जीवन में अनुभव कर पायेंगे कि वास्तव में प्रेम किसे कहते हैं।

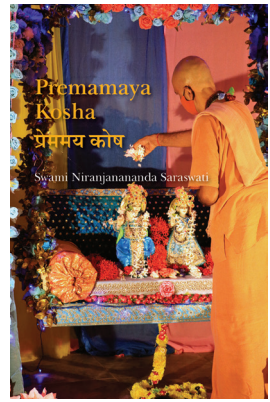

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना
biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st–7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

सभी ग्राहकों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना

आत्मस्वरूप

हरि: ॐ

हमें यह सुखद समाचार देते हुए हर्ष हो रहा है कि जनवरी 2021 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी ग्राहकों, सहयोगियों, योगप्रेमियों, भक्तों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध रहेंगी –

www.satyamyogaprasad.net

www.biharyoga.net

वर्तमान कोरोनावायरस महामारी और उससे उत्पन्न अनिश्चितता के कारण योगा और योगविद्या की प्रकाशित प्रतियाँ 2021 में ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। इसलिए 2021 में इन पत्रिकाओं के लिए नए सदस्यता आवेदन या पुरानी सदस्यता को बढ़ाने के आवेदन स्वीकार **नहीं** किए जा रहे हैं। अत: इन पत्रिकाओं के लिए सदस्यता आवेदन **मत** भेजिए।

पत्रिकाओं सम्बन्धी परिस्थिति की जानकारी आपको समय-समय पर मिलती रहेगी।

इस बीच श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् एवं अभिव्यक्त कीजिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्

सम्पादक